जमीनी सच्चाई

लेखक

देविंदर शर्मा

प्रकाशिका:

डॉ. इन्द्रजीत कौर

प्रधान

ऑल इण्डिया पिंगलवाड़ा चैरिटेबल सोसायटी (रजि.)

अमृतसर

सभी लेखों के प्रकाशन का अधिकार लेखक और प्रकाशक के पास सुरक्षित है।

जून 2026 को प्रथम बार छपा, 5,000 प्रतियाँ

प्रकाशिका:

डॉ. इन्द्रजीत कौर

प्रधान

ऑल इण्डिया पिंगलवाड़ा चैरिटेबल सोसायटी (रजि.)

अमृतसर।

फोन नं. 0183-2584586, 2584713, 97814-01140

Email: pingalwara57@gmail.com

Website: www.pingalwara.org

मुद्रक:

पूरन प्रिंटिंग प्रेस

पिंगलवाड़ा मानांवाला कॉम्प्लेक्स, जी. टी. रोड, अमृतसर।

विषय-वस्तु

क्रम सं.	लेख	पृष्ठ सं.
1.	दो शब्द	4
2.	भूमिका	6
3.	सोची–समझी रणनीति के तहत कृषि को तबाह किया गया	9
4.	घातक होगा दबाव में विदेशी खाद्यान्न हेतु बाजार खोलना	46
5.	उपभोक्ताओं को सब्सिडी दे रहे हैं किसान	50
6.	बढ़ी आमदनी लाएगी किसानों के लिए खुशहाली	54
7.	कृषि बजट वृद्धि दिलाएगी अरबपति राज से मुक्ति	58
8.	खेती लाभकारी बनी तो रूकेगा युवाओं का पलायन	62
9.	किसानों पर शिकंजे जैसा है फ्री ट्रेड फार्मूला	66
10.	मूल्य अंतर राहत के बजाय मिले गारंटीशुदा कीमत	70
11.	पेंशन की भांति किसान को सुनिश्चित कीमत क्यों नहीं	74
12.	किसानों को भी मिले कॉर्पोरेट जैसी उदार मदद	78
13.	सब्सिडी कवच लैस अमेरिकी उत्पादों से व्यापार युद्ध	82
14.	प्राकृतिक पूंजी की लूट से उपजा सभ्यता का संकट	86
15.	खाद्य सुरक्षा के लिए जरूरी है अरावली का वजूद	89
16.	कुदरती संसाधनों के दुरूपयोग से उपजा शहरी जल संकट	92
17.	चिंताजनक है भोजन की बर्बादी	96
18.	आकर्षक पैकेज में रोगवर्धक प्रोसेस्ड फूड	100
19.	पिंगलवाड़ा संस्थान की ओर से किये जा रहे कार्य	105

दो शब्द

देविंदर शर्मा जी किसान हितों के लिए पिछले लंबे समय से कार्य कर रहे हैं। हम उनके दीर्घ विचार समाचार–पत्रों और पुस्तकों में पढ़ते हैं। इन लेखों से पता चलता है कि देविंदर शर्मा जी बैठते, उठते, सोते हुए भाव 24 घंटे किसानी के बारे में सोचते हैं। समय–समय पर सरकारों को किसानों की मुश्किलों से परिचित करवाना देविंदर शर्मा जी की ओर से प्रस्तुत किया जाता है। कोई भी सरकार आती है उनकी ओर से कभी नहीं सोचा गया। स्वामी नाथन जी की ओर से बहुत समय पहले बताया गया कि किसानी को कैसे विकसित किया जा सकता है। भाव अभिषेक शर्मा जी अपनी कलम के द्वारा किसानी के लिए बहुत कुछ लिख कर गए हैं। जो सरकारों के सलाहकार खेती विज्ञान के लिए खेती प्रॉफिट धंधा बनाने के लिए उस समय की सरकारों की ओर से इस संबंधी कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया गया।

हमारे देश की किसानी बहुत छोटी है, जिनकी जमीन 3 से 5 एकड़ है। जब वह किसान रबी–खरीफ की फसलों के समय कुदरती आफतों का शिकार हो जाते हैं। उनका दर्द देविंदर शर्मा जी अपनी कलम के द्वारा हमारे सामने रखते हैं। लेकिन सरकारें इस ओर ध्यान नहीं दे रही। हमारे देश में हर वर्ष बजट के समय किसानी की ओर कितना ध्यान दिया जाता है? देविंदर जी के लेख पढ़ कर तो जो लोग किसानी नहीं कर रहे उनको भी किसानी का दर्द महसूस होता है। देविंदर जी अपने लेखों के द्वारा लिखते हैं कि वार्षिक बजट का 50 फीसदी भाग किसानी के लिए देना चाहिए। उन्होंने लिखा है कि हमारे देश के 21 अरबपतियों के पास 700 मिलियन से भी अधिक संपत्ति है।

देविंदर जी लिखते हैं अगर हमारे देश में कॉर्पोरेट कंपनियों का पिछले वर्षों में 16 लाख करोड़ का कर्ज माफ

किया जा सकता है, और जिन किसानों का 2 से 4 लाख कर्ज है तब उनका कर्ज क्यों नहीं माफ किया जा सकता है? वह लिखते हैं हमारे देश में कुछ राज्यों की रोशन दिमाग जवानी विदेशों की ओर दौड़ रही है। यह अत्यंत सोचने वाला विषय है, सरकारों के लिए। ट्रेड की बात करें तो देविंदर जी लिखते हैं कि कुछ परिवारों ने आयात–निर्यात (**IMPORT-EXPORT**) पर कब्जा किया हुआ है। आपने देविंदर जी के लेखों में पढ़ा है और जानते हो कि सब्जियों – फसलों को पैदा करने के लिए कितना खर्च आता है और अच्छा दाम न मिलने के कारण उनको सड़कों पर फेंकना पड़ता है।

इन सब परिस्थितियों को ध्यान में रखकर हम सब को और खासकर सरकारों को किसानों के बारे में सोचना चाहिए क्योंकि किसान हमारे देश की रीड़ की हड्डी हैं। इनके बिना हमारा देश विकास नही कर सकता।

मास्टर राजबीर सिंह,
मेंबर ऑल इण्डिया पिंगलवाड़ा चैरिटेबल सोसायटी (रजि.),
अमृतसर।
जनरल सेक्रेटरी खालसा कॉलेज,
अमृतसर।

भूमिका

किसानों के हितों से जुड़े मुद्दों को तार्किक ढंग से उठाने वाले, राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट ख्याति रखने वाले, देविंदर शर्मा की पहचान एक ऐसे कृषि–खाद्य विशेषज्ञ के रूप में होती है, जो निष्पक्ष रूप से अपने विचारों को बेबाकी से रखते हैं। ऐसे दौर में जब आज लेखक सत्ता प्रतिष्ठानों, राजनीतिक सरोकारों व बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रलोभनों व प्रभाव में नजर आते हैं, देविंदर शर्मा ऐसे आक्षेपों से मुक्त नजर आते हैं। किसानी मामलों में उनकी गहरी पकड़ है, जिसे उनके व्यापक अध्ययन ने समृद्ध किया है। यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने इंडियन एक्सप्रेस व जनसत्ता जैसे प्रतिष्ठित समाचार पत्रों में संपादक पद के प्रस्तावों को ठुकराकर मूक किसान की आवाज बनने का निर्णय किया। इंडियन एक्सप्रेस के विशेष कृषि संवाददाता के रूप में उन्होंने देशभर में किसानी के मर्म को समझा। फिलीपीन्स से लेकर फ्रांस तक कृषि शोध–अभियानों से जुड़े रहने वाले इसी कृषिफर्म की वजह से, वे आज उंगलियों पर गिने जाने वाले शीर्ष कृषि विशेषज्ञों में शुमार है। वे किसान अभियानों, कृषि शोध–संस्थानों में ही, अकसर खेत–खलियानों बाग–बगीचों में किसानी की जड़ों से जुड़े नजर आते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के जरिये, ऑल इण्डिया पिंगलवाड़ा सोसायटी के तत्वावधान में एक अभिनव प्रयास किसानों की आवाज को जन–जन तक पहुँचाने के रूप में हुआ है। दरअसल, देविंदर शर्मा मूलतः अंग्रेजी में लेखन करते हैं। लेकिन देश के अधिकांश किसान हिंदी या क्षेत्रीय भाषाओं को अपनी सहज सूचना स्रोत के रूप में देखते हैं। उसका व्यापक किसान समाज पर असर नजर आता है। इस पुस्तक में देविंदर शर्मा के हिंदी लेखों के संकलन को प्रकाशित करना पिंगलवाड़ा सोसायटी की इसी सोच को दर्शाता है। मकसद यही है कि अंग्रेजी में छपे लेखों के मर्म से बड़ा किसान समाज रूबरू हो सके।

दरअसल, इस पुस्तक में खेती–किसानी, आर्थिक नीतियों, प्राकृतिक संसाधनों व किसान हित से जुड़े लेखों को संकलित किया गया है। अटल तिवारी द्वारा लिये गए देविंदर शर्मा के एक लंबे साक्षात्कार के साथ पुस्तक में कुल 21 रचनाएँ संकलित हैं। दरअसल, ये रचनाएँ दैनिक ट्रिब्यून समेत अनेक समाचार पत्रों में समय–समय पर प्रकाशित हो चुकी हैं। जिसमें अमेरिकी किसानों को मिले सब्सिडी कवच विषयक लेख भी संकलित हैं। अन्य लेख में लेखक ने बताने का प्रयास किया है कि वास्तव में भारतीय किसान ही उपभोक्ता सब्सिडी देता है। उनका एक लेख दर्शाता है कि गारंटीशुदा कीमत ही किसानों का उद्धार कर सकती है। वे भोजन की बर्बादी की चिंता भी एक लेख में व्यक्त करते हैं। वे बताते हैं कि कैसे फ्री–ट्रेड फॉर्मूला किसानों पर शिकंजा कसता है।

एक लेख में देविंदर शर्मा बताते हैं कि लाभदायक खेती युवाओं को वापस इस व्यवसाय में ला सकती है। साथ ही वे चेताते हैं कि प्राकृतिक संसाधनों के दुरुपयोग से कैसे शहरों में जल संकट पैदा हो रहा है। अन्य लेख में उनका मानना है कि बढ़ी हुई आमदानी ही किसान के जीवन में खुशहाली ला सकती है। एक लेख में वे सवाल उठाते हैं कि आखिर कॉर्पोरेट को मिलने वाली उदार आर्थिक सहायता किसानों को क्यों नहीं मिलती, आखिर वे भी तो देश की जीडीपी व रोजगार बढ़ाने में योगदान देते हैं। वे मानते हैं कि बजट में वृद्धि से अरबपति राज से मुक्ति संभव है। एक लेख में उनका मानना है कि प्राकृतिक पूंजी की लूट से ही सभ्यता का संकट पैदा हो रहा है।

दरअसल, देविंदर शर्मा उन पहले कृषि विशेषज्ञों में शामिल थे, जिन्होंने किसानों को एक निश्चित रकम देने का सुझाव दिया था। कालांतर देश में प्रधानमंत्री किसान सम्मान योजना सिरे चढ़ी। वह बात अलग है कि राशि की मात्रा को लेकर चर्चा होती है। उनका मानना रहा है कि किसान को भी

पेंशन जैसी सुविधा मिले तो कृषि की उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है। उनका विश्वास है कि कृषि सुधारों के जरिये इसे देश के विकास का ग्रोथ इंजन बनाया जा सकता है।

वहीं दूसरी ओर देविंदर शर्मा को देश के उपभोक्ता की सेहत की भी फिक्र है। एक लेख में वे लिखते हैं कि आकर्षक पैक में रोगवर्धक पैकेज्ड फूड दिया जा रहा है। वे उन तत्वों को भी बेनकाब करते हैं जो सोची–समझी साजिश के तहत कृषि संकट को बढ़ावा दे रहे हैं। उनकी स्पष्ट राय है कि बजट बढ़ाकर किसानी के संकट दूर किए जा सकते हैं। कहीं वे उस आशावाद का जिक्र भी करते हैं जहाँ औद्योगिक क्षेत्र से निकलकर श्रमिक किसानी की ओर लौटे हैं। वे जोरदार तरीके से वकालत करते हैं कि देश बनाने में किसान को भी लेकर चला जाए। साथ ही ग्लोबल वार्मिंग के संकट से कृषि उपज पर पढ़ने वाले प्रभावों के मद्देनजर वे सुझाव देते हैं कि खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में प्राकृतिक खेती निर्णायक भूमिका निभा सकती है। वे आज कृषि को घाटे से बचाने के लिये एक सुरक्षा तंत्र बनाने की वकालत एक लेख में करते हैं।

दरअसल, किसानी के मुद्दों पर जमीन से जुड़े समाधान जानने वाले देविंदर शर्मा का मानना है कि सही मायनो में समृद्ध भारत की राह खेत–खलियानों से ही निकलेगी। निश्चित यह पुस्तक देश के हिंदी व गैर अंग्रेजी भाषी किसानों के विवेक को जगाने के लिये एक मार्गदर्शक की भूमिका निभाएगी। इस प्रयास का निश्चित रूप से देश में स्वागत किया जाएगा।

मूक किसान को आवाज देने का सांझा ऋषिकर्म

अरुण नैथानी

सहायक संपादक़

दैनिक ट्रिब्यून

चंडीगढ़

सोची–समझी रणनीति के तहत कृषि को तबाह किया गया

(कृषि अर्थशास्त्री और खाद्य विशेषज्ञ देविंदर शर्मा से अटल तिवारी की बातचीत)

किसान एक तय कीमत माँग रहा है। वह उत्पादन तो खूब कर रहा है, लेकिन उसकी सही कीमत न मिलने के कारण वह मर रहा है। जिन नीति निर्धारकों और अर्थशास्त्रियों पर जिम्मेदारी थी कि वह किसान की जिम्मेदारी उठाएंगे, उसकी बात सही परिप्रेक्ष्य में रखेंगे, क्या वह इस मामले में असफल रहे हैं?

यह बहुत महत्वपूर्ण विषय आपने उठाया है। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि पंजाब, उत्तर प्रदेश में ही नहीं बल्कि पूरे भारत और सारी दुनिया में विकासशील देश हों या विकसित देश, सब में कृषि संकट भयानक दौर से गुजर रहा है। यह कई दशकों में बनाया गया है। इसे समझने के लिए दो उदाहरण रखता हूँ, जिससे स्पष्ट हो जाएगा कि सभी सोची–समझी रणनीति के हिसाब से सब हो रहा है। खेती–किसानी में इतनी मेहनत करने के बाद भी किसान को उसका हक का दाम नहीं मिलता। ऐसा नहीं है कि खेती अनुत्पादक थी या आर्थिक रूप से अव्यावहारिक थी। खेती में आज भी उतनी ही क्षमता है, जितनी हमेशा थी। लेकिन हमारे नीति निर्धारकों ने जो किया है उसे समझे बगैर यह पता नही चलेगा कि खेती में इतनी मार किसानों को क्यों पड़ रही है।

काफी समय पहले की बात है, पर मुझे याद है। 1966 में एमएस स्वामीनाथन फाउंडेशन चैन्नई में एक सेमिनार हुआ था। उसमें विश्व बैंक के सस्टेनेबल डेवलपमेंट के वाइस प्रेसीडेंट डॉ. इस्माइल सेरागिल्डिन ने कहा था कि अगले 20 साल में यानी 2015 तक विश्व बैंक का आकलन है कि भारत

से जो लोग गाँवों से शहरों की तरफ पलायन करेंगे उनकी जनसंख्या इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी की जनसंख्या से दोगुनी होगी। इन तीनों देशों की जनसंख्या 20 करोड़ थी। विश्व बैंक का 1996 का आकलन था कि अगले 20 साल में 40 करोड़ लोग गाँव से निकलकर शहर की तरफ पलायन करेंगे। बहुत साल मैं सोचता रहा कि यह शायद हमें अलर्ट कर रहे है। पर, बाद में समझ में आया कि वह अलर्ट नहीं कर रहे हैं। वह कह रहे थे कि आपको यह करना है।

इसी कड़ी में 2008 में विश्व बैंक की विश्व विकास सूचकांक की सालाना रिपोर्ट आई। उसमें लिखा था कि आपको जो काम दिया गया था उसे अभी तक नहीं किया। अब जल्दी करिए। इसे कैसे करेंगे, उसकी यह पूरी प्रक्रिया है। जमीन एक उत्पादक संपत्ति है और ऐसे आदमी के हाथ में है जो इसकी सही कीमत नहीं निकाल पाता। वह किसान है। उसको खेती से निकाल कर शहर में लेकर आइए। वह जमीन किराए पर लेकर या अधिग्रहण कर कॉर्पोरेट को दीजिए। रियल एस्टेट को दीजिए और उसे विकास के कामों में लगाइए। खेती में जो लोग रह गए है खासकर जो जवान लोग हैं, उन्हें खेती के अलावा कुछ नहीं आता। प्रयास करिए कि देश में प्रशिक्षण संस्थानों का एक नेटवर्क खोला जाए, जो उन नौजवानों को तैयार करें। औद्योगिक कार्य बल में समाहित करने के लिए। यह 2008 की बात थी। इसके अगले ही साल 2009 में देश के तत्कालीन वित्त मंत्री ने एक हजार आईटीआई खोलने का प्रावधान कर दिया। मतलब जो बात विश्व बैंक ने एक साल पहले कही थी उसे हमने 2009 में कर दिया।

इससे पता चलता है कि यह सोची–समझी रणनीति थी कि गाँव से लोगों को निकाल कर शहर में लाना है। उन्हें आईटीआई में प्रशिक्षित करना था। इसमें एक चीज बड़ी स्पष्ट है कि गाँव से लोगों को निकालना है। ऐसे में धक्का तो दे नहीं सकते। फिर क्या करेंगे? सबसे अच्छा तरीका है कि खेती

को आर्थिक रूप से कमजोर कर दीजिए। खेती में निवेश ही न करें। उसे नजरअंदाज करें। किसानों को उनकी फसलों का उचित दाम न दें। ऐसी हालत में किसान क्या करेगा। वो अहिस्ता–अहिस्ता खेती से निकल कर शहर की तरफ पलायन करने लगा। यही हमारे देश में होता आया है। यही हमारी सोच है, जिसके ऊपर हमने विकास का जो रास्ता अख्तियार किया है, वह वहीं से होकर जाता है।

दूसरा उदाहरण उससे भी पहले का है। 1983 में यूरोप के एक सज्जन–लेक वालेसा। वह पोलैण्ड के वर्कर सॉलिडेरिटि मूवमेंट के नेता थे। उस समय की नोबेल कमेटी को लगा कि वालेसा को नोबेल पुरस्कार मिलना चाहिए या नहीं, इसकी पड़ताल के लिए एक छोटी टीम का गठन किया। उस टीम को पौलैण्ड भेजा गया। उस कमेटी के चेयरमैन डॉ. नार्मन बोर्लोग थे, जो पहले नोबेल पुरस्कार पा चुके थे। बोर्लोग हरित क्रान्ति के कर्ता–धर्ता माने जाते हैं। 1983 के आसपास वह भारत आए थे। उस समय मैं 'द इंडियन एक्सप्रेस' अखबार का कृषि संवाददाता था। मुझे उनके साथ यात्रा करने का अवसर मिला। पंतनगर में वह आए थे। मैंने उनसे सवाल किया कि वालेसा साहब को नोबेल पुरस्कार मिला है। आप इस पर क्या सोचते हैं? उन्होंने कहा कि मैं बहुत खुश हूँ कि आपने मुझसे यह सवाल पूछा।

बोर्लोग ने कहा कि जब मैं पोलैण्ड गया तो वहाँ पाया कि वालेसा वर्कर सॉलिडेरिटी मूवमेंट के नेता हैं। वह माँग कर रहे है कि सस्ता अनाज कर्मचारियों को मिले। मैंने देखा कि वह वास्तव में एक वर्ग को दूसरे वर्ग से नाराज कर रहे हैं। क्योंकि जो आदमी सस्ता अनाज खाएगा या जिसको हम सस्ता अनाज उपलब्ध कराएंगे, आप उनके बारे में तो सोच रहे हैं। लेकिन आप उनके बारे में सोचिए जो वह अनाज पैदा कर रहे हैं। इस पर बोर्लोग ने कहा कि मेरी सिफारिश थी कि वालेसा को नोबेल पुरस्कार नहीं मिलना चाहिए। फिर भी उनको नोबेल पुरस्कार दिया गया। मैंने कहा कि ऐसा क्या था कि आपकी सिफारिश के बावजूद वालेसा को नोबेल दिया गया। दरअसल

यह वैश्विक सोच है कि अनाज की कीमत को नीचे रखना है। इन दो उदाहरणों से पता चल जाता है कि जो आर्थिक मॉडल हमने तैयार किया है, उसके कारण खेती की अनदेखी की है। असल में हम उद्योग के लिए कृषि का त्याग कर रहे हैं। आपका जो सवाल था कि इतने सालों से किसानों को सही कीमत नहीं मिलती तो यह कारण है कि उसे सही इनकम नहीं मिलती।

हमने जान–बूझकर किस तरह खेती को कमजोर किया है। इसके लिए एक और उदाहरण देखिए। वैसे यह बात मैंने कई जगह कही है। 1970 में गेहूँ न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) 76 रूपये प्रति क्विंटल था। यह हरित क्रांति के शुरूआती साल की बात है। 2015 में यह बढ़कर 1450 रूपये प्रति क्विंटल हो गया। यह 19 गुना की बढ़ोतरी थी। इसी समय में सरकारी वेतनभोगी और प्रोफेसरों के वेतन की तुलना करेंगे तो भारी अंतर मिलेगा। हमने सरकारी कर्मचारियों के वेतन का बेसिक और डीए देखा तो उसमें 120 से 170 गुना हुई। स्कूल के शिक्षकों का 280 से 300 गुना बढ़ा। अगर इसी समय में प्रोफेसरों और सरकारी नौकरी करने वालों के वेतन भी मात्र 19 गुना बढ़ता तो इसमें से आधे आत्महत्या कर चुके होते या अपना व्यवसाय छोड़ देते।

किसान की इनकम सरकारी कर्मचारी के बराबर कर दीजिए। वह आपसे कभी कोई सब्सिडी नहीं मांगेगा। कभी आपसे शिकायत नहीं करेगा कि हम संकट में हैं। उसे संकट से निकालने का तरीका यह है कि हम उसे उचित कीमत दें। आप, हम और जो लोग इस बातचीत को देख रहे हैं क्या हम सभी ने कभी सोचा है कि किसान को इस स्थिति में क्यों रखा गया? फिर हम उसे आशा की किरण दिखाते हैं कि मैंने आपका बहुत फायदा किया है। आपको ये दे रहे हैं। वो दे रहे हैं। हम सभी की 45 साल के अंतराल में मात्र 19 गुना रकम बढ़ी होती तो वही संकट भुगत रहे होते जो आज किसान भुगत रहे हैं। खेती में जो मुख्य संकट है वह जान–बूझकर उस पूरे वर्ग को दबाए रखने की वजह से है। उसका हक जो बनता था, वह नहीं दिया गया।

आपने विश्व बैंक की जो बात कही है कि विश्व बैंक क्या चाहता था और उसे सरकारों और नीति नियंताओं ने किस तरह से किया। कृषि आय में वृद्धि नहीं हो रही और इसी कारण जो नीति आयोग है या आरबीआई के गर्वनर रहे रघुराम राजन, जिन्हें बड़ा अर्थशास्त्री माना जाता है, उन्होंने भी यह बात कही है कि कृषि आय में बढ़ोतरी के लिए लोगों को कृषि से शहरों की ओर स्थानांतरित करना जरूरी है। इस तरह देखा जाए तो जो विश्व बैंक कह रहा था, वही लाइन हमारे अर्थशास्त्री ले रहे थे। आप कैसे देखते हैं?

इसमें कोई अचम्भा नहीं होना चाहिए। हमारी जो आर्थिक सोच है, वह वहीं से आती है। विश्व बैंक हो गया। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) हो गया, जिसको हम वाशिंगटन कंशेसनेस कहते हैं, उसी का यह परिणाम है। साथ ही जो बाहर के विश्वविद्यालय हैं। बिजनेस स्कूल हैं। इकोनॉमिक इंस्टीट्यूट हैं। वे सभी इस बात को मजबूती देते हैं कि जब तक खेती से लोगों को निकाल कर शहरों में नहीं लाएंगे तब तक आर्थिक विकास नहीं होगा। हम जब दूसरे देशों की यात्रा करते हैं। विश्वविद्यालयों में बोलने जाते हैं या कहीं बाहर जाते हैं तो शाम को अर्थशास्त्रियों के साथ बैठ कर बहस करनी पड़ती है। वे कहते हैं कि जब तक गाँव के लोग खेती से निकल कर शहर में काम करने नहीं आएंगे तब तक विकास नहीं होगा। मैं कहता हूँ कि यह धारणा गलत है। जो अमेरिका ने कर दिया। जो यूरोप ने कर दिया। जरूरी नहीं कि वहीं भारत को करना है। यह दुनिया के डोमिनेंट क्लास ऑफ इकोनॉमिस्ट हैं, जो लेजी इकोनॉमिस्ट हैं। वे केवल कट एंड पेस्ट करके भारत को चिपकाते हैं। उसी कारण हमारी नीतियाँ हैं। खेती में वह जिस संकट को बना रही हैं, वह सभी के सामने है। इसी वजह से आर्थिक असमानता तेजी से बढ़ रही है।

आपने जो सवाल किया उसके संबंध में एक घटना और सुनिए। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के एक गर्वनर ने अपने एक इंटरव्यू में कहा था कि भारत का सबसे बड़ा रिफार्म तब होगा जब हम खेती से लोगों को निकाल कर शहर लाएंगे,

क्योंकि शहर में सस्ते मजदूरों की जरूरत है। तब मैंने कहा था कि सस्ते मजदूर यानी दिहाड़ी मजदूर की जरूरत है। आपने गाँवों से लोगों को यह कहकर निकाला कि छोटी जोत है। अलाभकारी है। उसे शहर ले आए। वह शहर में क्या कर रहा है। आपने शहर में दिहाड़ी मजदूर बना दिया। विश्व बैंक का एक उदाहरण मैंने दिया था कि उसने कहा था कि 20 साल में इतने करोड़ लोग गाँव से निकल कर शहर में आने चाहिए। मेरा मानना है कि यह गाँव से शहर की ओर पुश किए गए हैं। हम सोचते हैं कि ये शहर में समाहित हो जाएं।

कोरोना में जब लॉकडाउन लगा था तब कुछ ही दिनों में करोड़ो लोग पैदल गाँव से निकल कर लोग शहर में खप जाएंगे, वह नहीं हुआ। लोगों को दो–चार दिन का ब्रेक मिला और वह लिंक टूट गया। वे सैकड़ों किलोमीटर पैदल चलकर गाँव पहुँच गए। कई आकलन हैं–करीब 10 करोड़ लोग एक से दूसरे राज्य, राज्य में एक से दूसरी जगह वापस गए। उसमें से अधिकतर वापस नहीं लौटे। इसका मतलब कि कृषि ने उनको भी समाहित कर लिया। अगर हमने कृषि की तरफ ध्यान दिया होता तो जो बेरोजगारी का संकट है वह भारत में नहीं होता। जिस देश की 50 प्रतिशत आबादी खेती से जुड़ी है, उस क्षेत्र को बिल्कुल इग्नोर किया। हमें लगता है कि आर्थिक विकास के सारे रास्ते को दोबारा जाँचने की जरूरत है। यह सोचने की आवश्यकता है कि देश के लिए मौजूदा रास्ता सही है या किसी और तरीके से चलना चाहिए। इस काम पर फोकस करेंगे तो खेती–किसानी का समाधान भी उसी से जुड़ा है।

जो बात आपने कही है वही बात ओई सी डी–आई सी ए आई आर के 2000 से 2016 के बीच किए गए अध्ययन में कही गई है कि किसानों को तय कीमत न मिलने से 45 लाख करोड़ रूपये का नुकसान हुआ है। 40 वर्षो से किसान उसी इनकम में गुजारा कर रहा है। शायद इसी वजह से खेती में इतना भयानक संकट है?

यह अध्ययन ऑर्गनाइजेशन फॉर इकोनॉमिक कोऑपरेशन एण्ड डेवलपमेंट (ओईसीडी) का है, जो दुनिया का सबसे रिचेस्ट ट्रेडिंग ब्लॉक है। हमारी एक दिल्ली की संस्था एकीआर (इंडियन काउंसिल फॉर रिसर्च ऑन इंटरनेशनल इकॉनामिक रिलेशंस) है। उसके साथ मिलकर उन्होंने अध्ययन किया है, लेकिन इसमें भी थोड़ा गैप है। अध्ययन के अनुसार 2000 से 2016 के बीच भारतीय किसानों को 45 लाख करोड़ रूपये का नुकसान हुआ है। 45 लाख करोड़ रूपये कहने का उनका मतलब है कि किसानों को अंतर्राष्ट्रीय कीमत नहीं मिली। मेरा मानना है कि इसमें गैप है। जो आकलन हम देख रहे हैं उससे यह स्पष्ट है कि इतना बड़ा नुकसान हुआ। किसानों को भुगतना पड़ा और देश में कहीं चर्चा तक नहीं हुई। यह किसानों के प्रति डबल सोच थी, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय कीमत हम नहीं जानते। अर्थशास्त्री भी इसका जिक्र नहीं करते कि अंतर्राष्ट्रीय कीमत पहले से कम होती है। अमीर देश कृषि की अलग–अलग वस्तुओं में इतनी सब्सिडी देते है कि कीमत कम हो जाती है। उस कम कीमत से आप अपने देश के किसानों की आय का आकलन कर रहे हैं। मतलब पहले कीमत कम हुई। फिर उस कम कीमत से दोबारा अपने किसानों को देख रहे हैं। अगर उस अंतर्राष्ट्रीय कीमत से भी 15 प्रतिशत कम मिली तो मूल कीमत जो होगी, जो सब्सिडी के माध्यम से कम हो गई, अगर हम उससे मैच करते तो सही तस्वीर सामने आती कि खेती में कितना गंभीर नुकसान हो रहा था। 16 साल के समय में 45 लाख करोड़ रूपये यानी 2.64 लाख करोड़ रूपये का हर साल किसानों को नुकसान हो रहा था।

उसी समय यानी 2000 से 2015 के बीच देश में खाद्य का कटोरा कहे जाने वाले पंजाब में पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला, कृषि विश्वविद्यालय लुधियाना और गुरूनानक देव विश्वविद्यालय अमृतसर ने मिलकर एक अध्ययन किया। उसके अनुसार 16600 किसान और किसान मजदूरों ने पंजाब में

आत्महत्या की। भारत में कृषि उत्पादन में जो राज्य शीर्ष पर है अगर उसी में इतना गंभीर रेट आफ सुसाइड हो रहा है तो इसका मतलब है कि जो संकट है वह वास्तव में खेत में नहीं है। वह खेत से बाहर है। वह इसलिए है क्योंकि किसानों को आय या इनकम से वंचित रखा गया है। पंजाब के मामले में बड़ी दिलचस्प बात है। गेहूँ और धान का अगर हम जोड़ लें तो पंजाब का किसान 11 टन प्रति हेक्टेयर के हिसाब से हर साल पैदावार करता है। यह आंकडे दुनिया में शीर्ष पर हैं। इसके बावजूद वह आत्महत्या करने को मजबूर है। इसका मतलब कहीं तो संकट की लड़ी है। वह हमें नजर आनी चाहिए। लेकिन वह नजर नहीं आ रही। फिर भी हम कहते हैं कि जितना ज्यादा पैदा करोगे उतनी ज्यादा आय या इनकम होगी। पंजाबी में एक कहावत ह–'रज के वा, दब के खा,' वह गलत थी। रज के वा मतलब कि जितनी ज्यादा पैदावार करोगे उतनी ज्यादा आपकी आय या इनकम होगी। वह नहीं हुआ। इन सब बातों का जो संदेश है कि जब तक हम सही नीतियों की तरफ नहीं बढ़ेंगे तब तक खेती को संकट से नहीं निकाल सकेंगे।

सरकारें जिस ग्रोथ की बात करती है और उसके लिए सारे प्रयास करती है कि सात प्रतिशत हो जाए, आठ प्रतिशत हो जाए, नौ प्रतिशत हो जाए। मान लीजिए कि 10–12 प्रतिशत हो जाए तो क्या उससे खेती पर कोई असर पड़ने वाला है?

मैंने कई बार कहा है कि अगर देश की आर्थिक विकास दर आठ फीसदी हो जाए। कल नौ फीसदी हो जाए। कृषि की भी छह फीसदी हो जाए। अक्सर वह चार फीसदी से कम या उसके आसपास रहती है। तब भी किसान की आत्महत्याएँ कम नहीं होंगी। इसकी वजह है कि हमने कभी देखा ही नहीं कि हम उत्पादन के बेस पर जो जीडीपी की ग्रोथ देखते हैं, उसका आय या इनकम से या आजीविका से क्या लिंक है। इसे समझने के लिए एक अलग प्रतिबिंब तैयार करना पड़ेगा। क्यों नहीं हम जीडीपी को छोड़कर हर साल यह देखें कि किसान की आय या इनकम कितनी बढ़ी? किसान की आत्महत्याएँ कितनी कम

हुई? खेती के संसाधनों के बात करते हुए देखें कि कीटनाशक ओर रासायनिक खाद कितना कम किया जाए ताकि हम जमीन का रखरखाव कर सकें। साथ ही क्लाइमेट चेंज से हम सब चिंतित हैं। उसको ठीक करने की दिशा में हम बढ़ रहे या नहीं बढ़ रहे? इन सब चीजों का आकलन जीडीपी में होना चाहिए। क्लाइमेट चेंज की कैटसट्राफी (तबाही) सामने आ रही है तो वह जीडीपी के कारण। जीडीपी ग्रोथ की रेस प्राकृतिक संसाधनों को खा जाती है या नष्ट करती है। उसने हमें आज इस कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। फिर भी दुनिया इस बात को मानने को तैयार नहीं। हाँलाकि अब दबाव पड़ रहा है। लोग समझ रहे हैं। इस बात को उठा रहे हैं। आशा करते हैं कि आने वाले दिनों में और समझ आएगा।

कोरोना के दौर का आपने जिक्र किया है। इस पर सरकार ने कहा है–कोरोना का असर कृषि व उससे जुड़े क्षेत्रों पर बहुत कम पड़ा है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा और किसानों की आय में वृद्धि हुई है, इसके लिए सरकार की नीतियाँ काफी मददगार रही हैं, इसे कैसे देखते हैं?

हर सरकार यह दावा करती है कि उसने किसानों के लिए बहुत कुछ किया है। अब तो हम अमृत काल में चल रहे हैं। वैसे पिछले 75 साल में हमने हर सरकार से सुना है कि हमने खेती के लिए बहुत किया है। एक बार ऑल इंडिया रेडियो ने एक काम किया। दिल्ली में हम दो कृषि पत्रकार उस समय थे। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के संवाददाता सुरेन्द्र सूद और हमें बुलाया गया। उन्होंने देश के सभी प्रधानमंत्रियों के मुख्य वक्तव्यों से कट करके कृषि पर दिए गए वक्तव्य सुनाए। प्रधानमंत्री नेहरू जी ने यह बोला। शास्त्री जी ने यह बोला। इंदिरा गांधी ने यह बोला। फिर उन वक्तव्यों पर हम दोनों की टिप्पणी ली। उन्होंने उसे 15 अगस्त को देश को सुनाया। उनका यह प्रयास काफी अच्छा लगा। मेरे ख्याल से वह सभी को सुनना चाहिए। उससे पता चलेगा कि प्रधानमंत्रियों ने आज तक क्या कहा, उसके बाद भी कृषि संकट में चली गई।

संकट बढ़ता गया। मैं यह नहीं कह रहा कि उनका इरादा ठीक नहीं था। यह मैंने कभी नहीं कहा। मेरा कहना है कि कहीं शायद कोई गैप रह गया, जो हम नहीं समझ सके। वह दायित्व हम सब का है। राजनेताओं का भी है कि देश की 50 फीसदी जनसंख्या को देखें जो 60 करोड़ से अधिक खेती से जुड़ी है। यह कोई छोटा समुदाय नहीं है। जिस दिन यह आर्थिक रूप से मजबूत हो जाएगा उस दिन देश की आर्थिक प्रगति तेजी से बढ़ेगी।

कहा जाता है कि जब सातवां वेतन आयोग आया था तब उद्योग जगत ने कहा यह तो देश की इकोनॉमी के लिए बूस्टर डोज होगा, क्योंकि यह तकरीबन चार फीसदी लोगों को मिलेगा। इससे बाजार में खर्च की माँग बढ़ेगी। सोचिए, जिस दिन 50 फीसदी लोगों के पास ज्यादा पैसा होगा तो कितनी मांग बढ़ेगी। उस माँग को जब पूरा करना होगा तब हमारी जो ग्रोथ होगी, वह बूस्टर डोज से नहीं रॉकेट डोज से ऊपर तक जाएगी। यह अर्थशास्त्रियों को समझ क्यों नहीं आता? इसलिए समझ नहीं आता, क्योंकि अर्थशास्त्र मैंने पढ़ा है। आपने पढ़ा है या देश के अर्थशास्त्री जो पढ़ते हैं उसमें यह लिखा ही नहीं। यही कारण है कि हमारे अर्थशास्त्री अब तक क्लास की किताबों से बाहर नहीं जा सके। आज दुनिया में जिस इकोनॉमी पर सवाल हो रहे हैं। हम उसी रास्ते पर आक्रामक तरीके से चल रहे हैं। अमेरिका को देख लें। भारत को देख लें। दोनों के आर्थिक नीतियों में गैप आना शुरू हो गया है। वह कुछ और कह रहे हैं। हम कुछ और कह रहे हैं। वह 10 साल पहले जो कह रहे थे हम उस रास्ते पर चल रहे हैं। मुझे लगता है कि हमें आज के समय के अनुकूल अपने आपको बदलना चाहिए। हम अपनी इकोनॉमिक सोच को अपने रास्ते के लिए, अपने देश के लिए और उसकी प्रगति के लिए लगाएं न कि यह देखें–कट एंड पेस्ट हमें बाहर कहाँ से करना है।

एक तथ्य का आपने कई बार उल्लेख किया है कि देश के आधे यानी 17 प्रदेशों में किसान की मासिक आय 1700 रूपये से कम है। कृषि को छोड़कर सभी क्षेत्रों में मिनिमम लिविंग वेज की बात होती है तो किसान को यह सुविधा क्यों नहीं मिलनी चाहिए?

इसका उत्तर बहुत ही आसान है। यह सोची–समझी रणनीति का हिस्सा है, जिसकी हम आज बात कर रहे हैं। आपने जो आंकड़ा बताया यह 2016 के इकोनॉमिक सर्वे में था। उसके दो दिन बाद बजट पेश हुआ। उसमें तत्कालीन वित्त मंत्री अरूण जेटली ने कहा था कि हम अगले पाँच साल में किसान की आमदनी दोगुनी कर देंगे। बजट के बाद विश्लेषण के लिए हम एनडीटीवी न्यूज चैनल पर थे। मुझसे पूछा गया कि अभी किसानों की आय या इनकम कितनी है, जिसे सरकार दोगुना कर देगी। हमने कहा कि इसके लिए ज्यादा दूर जाने की जरूरत नहीं है। अगर दस्तावेज पढ़ लें, जो दो दिन पहले संसद में पेश हुआ है, यह अलग बात है है कि किसी ने पढ़ा नहीं। उसमें लिखा हुआ था कि देश के 17 राज्यों में किसान परिवार की जो औसतन आय है वह 20 हजार रूपये साल की है यानी महीने में 1700 रूपये से कम। 1700 रूपये से कम में तो गाय नही पाली जा सकती। 17 राज्य माने आधा देश हो गया। आधे देश में 1700 रूपये से कम में गुजारा करते हैं किसान परिवार तो उनकी स्थिति गाय से भी बदतर होगी। अगर आप 1700 रूपये को 34 या 35 सौ कर दीजिए तो आप क्या बदलाव लाए। वह तो वैसे ही कुछ सालों बाद मंहगाई के समायोजित होने में अपने आप बढ़ जाएगी। हमारा कहना है कि अगर देश में खेती इस स्थिति में पहुँच चुकी है तो यह बहुत बड़ी चुनौती है। हम खेती को उस संकट से ही नहीं निकालें बल्कि उसको आर्थिक रूप से मजबूत भी करें।

इसी के साथ आपने लिविंग इनकम की बात की। मैं इस बात को कहता रहा हूँ कि दुनिया के किसी भी देश में किसानों को लिविंग नहीं मिली। किसान को पूरा हक नहीं मिला। यह

मत सोचिए कि इतना बड़ा और लंबा किसान आंदोलन सिर्फ भारत में हुआ है। 1979 में एक बहुत बड़ा ट्रैक्टर का आंदोलन वाशिंगटन डीसी में हुआ था। वहाँ पर भी किसानों की यही माँग थी। कि किसानों को इनकमपैरिटी इनकम मिले। भारत में किसान निर्धारित कीमत कह रहे हैं। वह अपनी भाषा में इनकमपैरिटी माँग रहे थे। एक तरह से हमारे देश में भी किसान इनकमपैरिटी माँग रहे हैं। आज भारत के किसान आंदोलन की यही माँग है कि उन्हें इनकमपैरिटी इनकम दी जाए। आप दुनिया के अलग–अलग आंदोलन देख लें। मैंने काफी कुछ समझने की कोशिश की है।

सारी दुनिया में कम से कम 150 साल से इनकमपैरिटी इनकम के लिए आंदोलन हो रहे हैं। कनाडा का हाल देखिए। कनाडा में गेहूँ की कीमत आज जो मिलती है और 1850 में जो मिलती थी, उसमें अगर अंतर किया जाए तो पता चलता है कि वह छह गुना कम हो गई है। ब्रेड की कीमत सात गुना बढ़ गई है। मुझे एक उद्योग दुनिया का बता दीजिए, जहाँ पर उनका उत्पादन मूल्य कम हो गया है। लेकिन क्या कारण है कि जब हम कृषि के लिए कहते हैं कि यह कम हो गया है तब देश के अर्थशास्त्री कहते है–यह प्रतिस्पर्धी बन गया है। यह कितना दिलचस्प है। भाषा देखिए–यह प्रतिस्पर्धी हो गया है। प्रतिस्पर्धा से आपका क्या मतलब है? यहाँ तो लाखों लोग खेती से बाहर निकल गए। कनाडा, यूरोप और अमेरिका में सभी जगह निकल गए। उसकी किसी ने बात नहीं की। यही एक इकोनॉमिक डिजाइन है, जिसे हम जब तक नहीं समझेंगे तब तक मालूम ही नहीं होगा कि किसानों को मार क्यों पड़ रही है?

अमेरिका या यूरोप के किसानों की बात की जाए तो वे अपनी उपज खुले बाजार में बेचते हैं, लेकिन तब भी वहाँ के किसान तबाह हैं। अमीर देश बड़े पैमाने पर कृषि को सब्सिडी देते हैं। इसके बावजूद किसानों पर कर्ज है। आत्महत्याएँ खूब हो रही हैं। भयानक संकट है। ऐसे में वहाँ का फेल कृषि सुधार मॉडल यहाँ के लिए फायदेमंद कैसे हो सकता है?

यह बात मैंने कई बार कही है। आंदोलन के दौरान भी कही है। अपने लेखों से लेकर हर मंच पर इसका जिक्र किया है। हम भारत में जो मार्केट रिफॉर्म लाने की कोशिश कर रहे हैं। उसकी बातें लंबे समय से की जा रही थीं। 2003 से देश में चल रहा है कि एमएसपी को हटाएं। बाजार को लेकर आएं। यह अर्थशास्त्री कह रहे थे। मैंने कहा कि यह सब वही अर्थशास्त्री हैं जो आलसी अर्थशास्त्री हैं। दुनिया भर से कट एंड पेस्ट किया और आपको चिपका दिया। जिस तरह मैंने कनाडा का उदाहरण दिया उसी तरह अमेरिका में आज यह हालात है कि वहाँ हर पाँच साल के बाद एक फॉर्म बिल पेश किया जाता है। उस बिल में कितना कृषि में अगले पाँच साल में सब्सिडी और निवेश होना है, उसका जिक्र होता है। यह 1930 के आस–पास से मिलता आ रहा है। पिछले 2018 के बिल में अगले 10 साल के लिए 850 या 860 बिलियम डॉलर की सब्सिडी अथवा निवेश का प्रावधान किया गया। इसके बावजूद दो साल बाद 2020 में किसानों पर 425 बिलियन डॉलर का कर्ज था। उसकी जो मध्यम आय थी। वह पिछले 15 सालों से निगेटिव में जा रही थी। यूएस डिपार्टमेंट ऑफ एग्रीकल्चर के चीफ इकोनॉमिस्ट ने कहा कि 1960 के दशक के बाद इतना ही अध्ययन उन्होंने किया था। किसानों के आय में तेजी से गिरावट आ रही थी। अमेरिका में किसानों की आत्महत्या की दर भारत से कम नहीं है।

मैंने इस बात का कई बार जिक्र किया है। उस समय 13 साल हुए थे। अब 15 साल हो गए हैं। 'न्यूयार्क टाइम्स' में एक किसान की आत्महत्या की खबर छपी थी। हम उसको कभी भूल नहीं पाएं। उसमें बताया गया था कि अमेरिका का एक डेयरी फॉर्म था। डेयरी किसान वह है, जो हमारे हिसाब से बहुत विवेकी है। उसकी गाय भी बड़ी उत्पादक है। यानी अधिक दूध देने वाली है। पूरा व्यवस्थित है डेयरी फार्म, लेकिन जब उसने आत्महत्या की तो पहले अपनी 51 गायों को गोली मारी। फिर उसने अपने आपको गोली मारी। जो गहरा तनाव उस किसान के सिर पर था, कितने

बड़े मानसिक संकट में वह था। वह अकेला नहीं है। अमेरिका में 1970 के आसपास लगभग छह लाख डेयरी फॉर्म थे। आज उसमें से 93 प्रतिशत बंद हो चुके हैं। इनके बंद होने का कारण यह था कि कीमतें बहुत नीचे चली गई। किसान के लिए कोई और विकल्प नहीं है। ऐसे में वह आत्महत्या करेगा या खेती छोड़ देगा। डेयरी फॉर्म बन्द कर देगा। अमेरिका में आत्महत्या की जो दर है वह ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों से 45 प्रतिशत ज्यादा है।

अमेरिका के कई राज्य ऐसे हैं जिन्होंने उपचार के लिए अनेक कदम उठाए हैं। अगर किसान तनाव में हैं या दिमागी तनाव से टार्चर में जा रहे हैं तो उसके लिए सेवाएं उपलब्ध करा रहे हैं। मानसिक स्वास्थ्य केन्द्र बनाए हैं। उसके लिए बजट का प्रावधान है। कहने का मतलब यह कि अमेरिका में स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है। फिर वहीं की नीतियों को कट एंड पेस्ट करके भारत में सुधार के नाम पर ला रहे हैं। इसका मतलब साफ है कि हमारे देश के अर्थशास्त्रियों को पता ही नहीं कि दुनिया में हो क्या रहा है। इस बात का बहुत दुःख है। आपको हैरानगी होगी कि मैंने जब शुरूआत में यह बात टेलीविजन पर कही तो मुझे कई अर्थशास्त्रियों ने कहा कि आपका यह विश्लेषण गलत है। मैंने पूछा क्यों गलत है तो उन्होंने बताया कि वहाँ खेती का आकार बड़ा है। यहाँ छोटा है। मैंने कहा कि आपको समझना चाहिए कि बड़े आकार में वह मॉडल काम नहीं कर रहा तो छोटे में कैसे काम करेगा। मेरे इस सवाल पर उनकी कोई सोच नहीं है।

आपने जो बात कही, उस पर नीति आयोग का हाल देखिए। अमेरिका में आज सिर्फ डेढ़ फीसदी जनसंख्या खेती में रह गई है। यहाँ नीति आयोग कहता है कि अभी पलायन की दर 1.84 फीसदी है। जब यह 2.24 फीसदी हो जाएगी तो किसानों की आमदनी अपने आप दोगुनी हो जाएगी। यह सोचने वाली बात है कि अमेरिका में 1.5 फीसदी जनसंख्या खेती में रह गई है और भारत में 50 फीसदी है। वहाँ डेढ फीसदी रहने के बाद भी किसानों पर इतना बड़ा कर्ज और आत्महत्याएं हो रही है।

फिर वहाँ की पुरानी आर्थिक अवधारणाओं और फेल मॉडल को नीति आयोग क्यों बढ़ावा दे रहा है। मुझे अच्छा लगा कि कम से कम हमारे प्रधानमंत्री इस बात को समझे और उन्होंने तीनों कृषि कानूनों को वापस लिया। उन्होंने यह भी कहा कि आत्म निर्भर भारत की तरफ हम बढ़ेंगे। इस तरह से सोचें कि उसकी तरफ हमें जाना कैसे है, कैसे जाना चाहिए और क्या करना चाहिए। हमें उस पर ध्यान देना चाहिए। इस पर ध्यान न देकर अगर कट एंड पेस्ट करके इकोनॉमिक सोच देश में लाई जाएगी तो मुझे नहीं लगता कि हम खेती के संकट से कभी बाहर निकल पाएंगे।

अमेरिका के संबंध में जो आपने डेयरी फार्म बंद होने की बात की है, मुझे लगता है कि इंग्लैड में भी काफी डेयरी फॉर्म बंद हो चुके हैं। उसके क्या कारण रहे?

यह सारे यूरोप की कहानी है। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड का हाल देख लीजिए। वहाँ भी डेयरी सेक्टर में भयानक संकट है। वह देख रहे हैं कि भारत, व्यापार संबंधी बातचीत में अपना बाजार खोल दे तो वह यहाँ अपने दुग्ध उत्पादों को निर्यात करे। लेकिन भारत सरकार ने इस मसले पर सूझबूझ से काम लिया। इसके लिए वाकई प्रधानमंत्री को श्रेय देना पड़ेगा कि उन्होंने जो क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी (आरसीईपी) संधि थी, जो दुनिया की बहुत बड़ी संधि है। उसमें एशिया और प्रशांत क्षेत्र के देश शामिल थे, उन्होंने अपने आपकों बाहर कर लिया। यह बहुत महत्वपूर्ण फैसला है। उसका मुख्य कारण यह था कि हमें अपने डेयरी सेक्टर को बचाना था। इसमें करोड़ों लोग जुड़े हुए हैं। उनके व्यवसाय को हम नहीं मार सकते। उन्हें खत्म नहीं सकते।

अमेरिका या यूरोप के देशों में सब्सिडी की बात आपने जो की है, भारत में तो उसके मुकाबले बहुत कम दी जा रही है, लेकिन जितनी भी दी जा रही है उस पर भी कॉर्पोरेट जगत या दूसरे लोग खूब नाक भौंह सिकोड़ते हैं जब किसानों को देने की बात आती है। ऐसा क्यों होता है?

इसका क्या रोल है, यह हमें समझना होगा। कृषि सब्सिडीज की बातचीत विश्व व्यापार संगठन में 1995 से हो रही है। एक तरह से यह ज्वलंत मुद्दा रहा है। अब भी ज्वलंत है कि अमीर देशों में कृषि में कितनी सब्सिडी दी जाती है। उससे हमारे देश में कीमतें गिर जाती हैं। उसके कारण क्या होगा कि जब देश में आयात आएगा तो वह प्रतिस्पर्धी बन जाएगा। मैंने इस पर एक अध्ययन किया था, जिसका बार–बार उदाहरण देता हूँ। यहाँ भी दे रहा हूँ। 1995 की अवधी में डब्ल्यूटीओ शुरू हुआ। इसके करीब दस साल बाद 2005 में मैंने एक आकलन किया। उससे पहले दो साल अमेरिका के कपास क्षेत्र में सूखा पड़ा था, वह भी एक बड़ा कारण था। उनका कुल कपास का उत्पादन 3.9 बिलियन डॉलर के बराबर था। लेकिन 4.7 बिलियन डॉलर की सब्सिडी दी जा रही थी। वह अमेरिका कर सकता था। उनके 20 हजार कपास का उत्पादन करने वाले थे। सब्सिडी से उनकी इनकम बढ़ गई, लेकिन कुल कीमत कम हो गई।

इसका परिणाम यह हुआ कि अफ्रीका के जो कपास के किसान थे वो बाहर हो गए, क्योंकि वहाँ सस्ता कपास आयात होगा। भारत में कपास के किसानों को मार पड़ी । यहाँ भी वही हाल कि सस्ता कपास बाहर से आयात होगा। इसके समझने के लिए जब तक हम सब्सिडी का ढांचा नहीं जानेंगे तब तक यह स्पष्ट नहीं होगा। आपको लगता है कि यहाँ के किसान की उत्पादकता कम है। यहाँ के किसान की जो आर्थिकी है, उसे आप अप्रभावी गिन लेते हैं। आपको यह नही पता चलता है कि अमेरिका में इतनी बड़ी सब्सिडी आ रही है, उससे कीमत कम हो जाती है। इस तरह आप भारत के किसान को अमेरिका की त्रासदी के साथ मैच करते हैं या बैलेंस करने की कोशिश करते हैं। यह कभी नहीं हो सकता। कहने का मतलब यह कि जो शर्तें वहाँ पर लागू है, वही शर्तें यहाँ पर लागू होंगी तब सही मूल्यांकन हो सकेगा।

डब्ल्यूटीओ का दिल्ली में स्टडीज सेंटर है–सेंटर फॉर डब्ल्यूटीओ स्टडीज। उनका अध्ययन था कि अमेरिका में किसान को 62 हजार डॉलर की हर साल सब्सिडी मिलती है और भारत में तकरीबन 280 डॉलर की सब्सिडी मिलती है। दोनों में कितना फर्क है। भारत में भी अगर 62 हजार डॉलर की सब्सिडी किसानों को दे दी जाए फिर दुनिया के किसी भी देश के किसान से तुलना करा ली जाए। सही स्थिति सामने आ जाएगी। अभी तक की तुलना का तरीका बताता है कि किस तरह हम एक सोच में लगे हैं कि यही रास्ता भारत को लेकर चलना चाहिए। इसमें हम किसान को आधी बात बताते हैं। आधी छुपा लेते हैं। जब तक हम यह नहीं बताएंगे कि अमेरिका की उत्पादकता इसलिए ज्यादा है, क्योंकि उनको इतना निवेश मिलता है या इतनी इनकम मिलती है। तब तक सही स्थिति सामने नहीं आएगी। लेकिन हम भारत के किसान को गलत सब्जबाग दिखाते है। इसी कारण यहाँ के किसान उस दौड़ में पिछड़ते जा रहे है और हताश होकर आत्महत्या कर रहे हैं।

कृषि के मामले में समूचे यूरोपियन यूनियन में फ्रांस की प्रमुख भूमिका बताई जाती है, लेकिन कुछ महीने पहले कृषि समस्याओं को लेकर वहाँ के किसानों ने वहाँ की संसद के बाहर सुसाइड डॉल्स लटका दी, पूरा मामला क्या था और फ्रांस की कृषि के क्षेत्र में मौजूदा स्थिति क्या है?

यह मार्च 2021 की बात है। फ्रांस के किसानों ने प्रदर्शन किया और पेरिस में संसद के बाहर पेड़ो पर सुसाइड डॉल्स को चिपकाया और लगाया यह दर्शाने के लिए कि हमारा यह संकट है। इसे दूर करिए। फ्रांस, यूरोप की पहली पंक्ति का बड़ा कृषि केन्द्रित देश माना जाता है। तकरीबन सात प्रतिशत जनसंख्या अब भी खेती से जुड़ी हुई है। लेकिन इतनी सब्सिडी, इतनी टेक्नोलॉजी, इतने निवेश के बावजूद फ्रांस के किसान आज इस संकट में हैं कि उनके फॉर्म बंद होते जा रहे हैं। वे खेती से निकल कर बाहर जा रहे हैं। इससे बड़ा संदेश मिलता है कि जिस मॉडल को हम भारत में लाने की कोशिश कर रहे हैं वह

अमेरिका, कनाडा ही नहीं यूरोप के अलग–अलग देशों की बात की जाए तो सभी जगह फेल हुआ है। फ्रांस की बात छोड़िए। अगर यूरोप की बात की जाए तो वहाँ 50 प्रतिशत जो किसान की इनकम है वह सब्सिडी से आती है। अमेरिका में 40 प्रतिशत किसान की इनकम सब्सिडी से आती है। इन सब्सिडीज को हटा दिया जाए तो दोनों देशों में जितनी बची–खुची कृषि है वह भी ध्वस्त हो जाएगी। इसका मतलब साफ है कि अगर बाजार इतने अच्छे होते तो दोनों देशों को सब्सिडी देने की जरूरत नहीं थी। आज अगर उन्होंने किसानों को जीवित रखा है तो उनको सब्सिडी दे–दे कर बचाया हुआ है।

एक बड़ा दिलचस्प मामला है। कुछ साल पहले की बात है। हम फ्रांस गए थे। मैंने एक किसान से पूछा कि आपके यहाँ खेती में जो जवान लड़के हैं उनकी शादी हो जाती है, क्योंकि हरियाणा मे तो नहीं होती। मध्यप्रदेश में नहीं होती। छत्तीसगढ़ में नहीं होती। उत्तर प्रदेश में नहीं होती। मैंने कई जगह पूछा। इस पर उन्होंने बताया कि हमारे यहाँ भी नहीं होती। मेरा अगला सवाल था कि इतनी सब्सिडी मिलने और इतनी ज्यादा उत्पादकता होने के बाद भी नहीं होती। उसने कहा–नहीं होती हमारी शादी। वहाँ मुझे एक हिंट मिला। फिर हम वहाँ गए। उनका एक टेलीविजन पर सीरियल आता है। उसका नाम है– 'लव इन द फील्ड'। उसमें वह हर हफ्ते स्टूडियो में लड़के और लड़कियों को बुलाते हैं। कोशिश करते हैं कि उनकों गाँव में जाकर रहने के लिए प्रोत्साहित करें। वहाँ जाकर इनकी शादी हो। उनके परिवार बसें। वह बहुत पापुलर सीरियल है। कई सालों से चल रहा है। मैं उम्मीद करता हूँ कि हमारे देश में बिग बॉस जो सीरियल है, हमें नहीं पता उसमें क्या होता है, लेकिन सलमान खान अगर सुन रहे हों तो उनसे अपेक्षा करूंगा कि कम से कम एक देश का भला कर दीजिए। आप भी एक सीरियल चलाइए–'लव इन द फील्ड' जिससे लड़के और लड़कियों की शादी तो हो जाए। गाँवों में जाकर वे रहें। मेरी

बात का सार यह है कि फ्रांस इतना संपन्न होने के बावजूद भी गाँव में कोई अपनी लड़की देने को तैयार नहीं है।

वहाँ टेलीविजन से पता चला कि यह सिर्फ फ्रांस में ही नहीं हो रहा। स्कॉटलैंड में भी एक टीवी शो है, जो इसी तरह काम करता है। उसमें भी लड़के और लडकियों को बुलाया जाता है ताकि गाँव जाकर रहने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। सामाजिक प्रभाव देखिए। समाज में क्या हो रहा है? वहीं से मुझे पता चला कि कनाडा में भी एक टीवी सीरियल है जो यही काम कर रहा है। कहने का मतलब यह कि दुनिया में आज समान संकट है। अलग–अलग पैमाने की बात अलग है कि भारत में बहुत ज्यादा जनसंख्या है। कई देशों में कम है। यह अलग बात है, लेकिन संकट जो है वह एक ही पैटर्न पर चल रहा है। इसलिए जो आपका सवाल था कि खेती में किसानों को सब्सिडी मिलना भारत में हमेशा से ज्वलंत विषय रहा है। सबसे पहले यह समझना होगा कि खेती में सब्सिडी की क्या भूमिका है और उसका क्या महत्व है? सब्सिडी से क्या होता है? सब्सिडी से कीमत किस तरह कम हो जाती है?

इससे भी खतरनाक चीजें उत्तर प्रदेश के कई इलाकों में देखने को मिलती है? आपने फ्रांस, स्कॉटलैंड, कनाडा व हिन्दुस्तान के कुछ इलाकों का जिक्र किया है कि शादियाँ नहीं हो रहीं, उससे भी ज्यादा गिरावट यह देखने को मिलती है कि दो–तीन भाईयों के बीच एक की शादी हो रही है।

पहले इस तरह की चीजें पहाड़ी क्षेत्रों में देखने को मिलती थी, जहाँ जमीन कम है। यह इसलिए हो रहा है, क्योंकि समाज में जो गिरावट है वह कृषि को तबाह करने का परिणाम है। एक यह कि शादियाँ नहीं हो रही है। दूसरा यह कि जहाँ गाँवों में शादियाँ हो चुकी हैं वहाँ भी हालत ऐसे हैं कि पति और पत्नी दोनों अलग–अलग प्रदेशों में जाकर मजदूरी कर रहे हैं। बच्चे ओर बूढ़े गाँव में रह गए हैं। आप आंध्र प्रदेश के अनंतपुर गाँव में चले जाइए। आपको इतने सारे परिवार मिलेंगे कि जहाँ बच्चों की आवाज आती है या बूढ़ों

की आवाज। जवान लोग हैं ही नहीं। पति और पत्नी दोनों अलग–अलग जगह पर मजदूरी करने गए हैं। सवाल उठता है कि यह क्यों हो रहा है तो उसका जवाब है कि आपने खेती को तबाह होने के लिए छोड़ दिया। मैंने पहले कहा था कि हम उद्योगों को बढ़ाने के लिए कृषि से समझौता कर रहे हैं। यही डिजाइन खेती–किसानी को इस रास्ते पर ले आया।

अब तो स्थितियाँ यहाँ तक पहुँच गई है कि आठ–दस–बारह साल के बच्चे भी कमाने के लिए शहर भेजे जा रहे हैं। कोई दुकान का शटर उठा रहा है। कोई झाड़ू लगा रहा है तो कोई चाय–पानी ला रहा है और तीन–पाँच –सात हजार रूपए कमा रहा है, क्या कहेंगे?

इसका समाधान एक ही था कि हमें कृषि पर ध्यान देना था। उस पर निवेश करना था। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया का एक अध्ययन बताता है कि साल 2011–2012 से लेकर 2017–2018 तक कृषि पर सार्वजनिक क्षेत्र का निवेश जीडीपी का मात्र 0.4 प्रतिशत हुआ है। देश की 50 प्रतिशत आबादी पर अगर आप 0.4 प्रतिशत निवेश करेंगे तो उससे क्या चमत्कार की उम्मीद करेंगे। वह होगा ही नहीं और वही हुआ। एक तरफ आप किसान को इनकम नहीं दे रहे। ऊपर से सार्वजनिक क्षेत्र का निवेश भी कम होता गया। इससे ज्यादा कारगर तरीका कृषि को खत्म का क्या हो सकता था? आज भी देश के बहुत सारे अर्थशास्त्री इस बात की खुशी मनाते हैं कि लोग पलायन कर रहे हैं। पलायन की दर बढ़ रही है। उनकी सोच वहीं फंसी है, जहाँ से वह बारो करते हैं। अपनी सोच को कट एंड पेस्ट करते हैं। इस सोच को बदलना होगा। वह तभी हो सकता है जब हिन्दुस्तान के नीति निर्धारक या राजनीतिक नेतृत्व कृषि को समृद्ध करने की दिशा में फैसला ले। जैसा हमारे प्रधानमंत्री ने कहा भी है कि आत्मनिर्भर भारत। सबका साथ–सबका विकास। ध्यान रखिए, सबका साथ–सबका विकास का रास्ता खेती से होकर जाता है। गाँव से होकर ही जाता है। जिस दिन किसान की इनकम बढ़ेगी उस दिन आप देखेंगे कि देश की इकोनॉमी दौड़ेगी।

बिहार में एमएसपी नहीं मिलता। देश के महज–दो ढाई राज्यों में एमएसपी मिलता है। उसको भी खत्म किया जा रहा है। एक माहौल बनाया जा रहा है–मार्केट बिल गिव टू बेस्ट प्राइज। अगर बाजार इतने अच्छे होते तो 94 प्रतिशत किसान जो मार्केट पर आधारित थे वह क्यों आत्महत्या कर रहे हैं?

जब शांता कुमार कमेटी का गठन हुआ था तो मुझे एक बार उसके सामने–जाने का मौका मिला। वहाँ मैंने अपनी प्रस्तुति में कहा था कि इस समय भारत में पैदावार का करीब 30–35 प्रतिशत गेहूँ और धान खरीदा जाता है। हमारा मानना था कि 30 या 35 फीसदी किसानों को एमएसपी मिलता है। इस पर शांता कुमार जी ने मुझसे पूछा कि देविन्दर जी इसका संदर्भ कहाँ से है कि 30–35 प्रतिशत किसानों को एमएसपी मिलता है। मैंने कहा कि मेरे पास कोई सन्दर्भ नही है। पर, मैं सोचता हूँ कि देश में छोटे किसान हैं और 30–35 प्रतिशत ही खरीद होती है तो इतना होना चाहिए। उन्होंने कमेटी के सदस्यों से पूछा तो किसी को नहीं मालूम था। इस पर उन्होंने कहा कि हम पूरा आकलन करके बताते हैं। शांता कुमार कमेटी ने कहा था कि देश में छह प्रतिशत किसानों को एमसएपी मिलता है। बाकी 94 प्रतिशत किसान निश्चित रूप से बाजार पर निर्भर हैं। अगर बाजार इतने अच्छे होते तो किसानों को आत्महत्या नहीं करनी पड़ती। खेती में संकट नहीं होता और न ही किसान एमएसपी बढ़ाने की बात करते। साधारण–सी बात है कि जब एमएसपी से उसे ज्यादा मिलेगा तो वह क्यों बोलेगा। मतलब स्पष्ट है कि एमएसपी ही आपके सामने एक ऐसा मानक था जो कम से कम गेहूँ और धान में निश्चित (भले कुछ फीसदी ही किसानों को) मिलता था।

बिहार में 2006 में एपीएमसी एक्ट को उठाकर फेंक दिया गया। उस समय कहा गया कि इससे निजी निवेश आएगा। इससे निजी मंडियाँ बनेंगी और किसानों को बड़ा अच्छा दाम मिलेगा। जिसको कहते थे कि प्राइस डिस्कवरी होगी। साथ में यह भी कहा गया था कि पंजाब को भूल जाइए। बिहार भारत में

एक नए बाजार से संचालित कृषि का अग्रदूत बनेगा। इस तरह की बातें करने वाले अर्थशास्त्रियों को मैंने उस समय भी चुनौती दी थी। इस तरह की आर्थिक सोच को जवाबदेह बनाना चाहिए। यह गलत है कि वह अर्थशास्त्री रिटायर होकर चले गए और हमने आज तक उनकी सुध नहीं ली। उनकी जिम्मेदारी तय करनी चाहिए। बिहार का जो नुकसान हुआ है। 15 साल में एक पीढ़ी चली जाती है। उस पीढ़ी का उन्होंने नुकसान किया है।

बिहार के लोग पंजाब के खेतों में आकर काम करते हैं। आपने कभी सुना कि पंजाब का किसान बिहार के खेतों में जाकर काम करता है। इसका मतलब कि वह आर्थिक नीति गलत थी, जिन लोगों ने वह आर्थिक नीति पुश की उन्हें जिम्मेदार ठहराना चाहिए। जब तक हम यह नहीं करेंगे तब तक आर्थिक दुर्दशा होती रहेगी और किसान भुगतते रहेंगे। यह करना जरूरी है। अगर पुल गिर जाता है तो हम इंजीनियर को पकड़ते हैं कि नहीं। किसी मरीज के पेट में कैंची रह जाती है तो डॉक्टर को पकड़ते हैं कि नहीं। ऐसे में अर्थशास्त्रियों को क्यों नहीं जिम्मेदारी के कटघरे में लाना चाहिए कि ऐसी सोच लेकर न आएं जो कट एंड पेस्ट वाली हो। देश को केन्द्र में रखकर नीतियाँ बनाएं जो खेती–किसानी के हित में हों। कहने का मतलब कि जिम्मेदारी जरूर जुड़ी होनी चाहिए। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यहाँ पीढ़ी दर पीढ़ी किसान तबाह हो रहे हैं। वे भी तो इंसान हैं।

जिस छह प्रतिशत एमएसपी की आप बात कर रहे हैं, उसमें कौन किसान हैं? चूकि मैं खुद गाँव से आता हूँ और इस विषय को लेकर जागरूक हूँ लेकिन आज तक हम और हमारे पिता जी एमएसपी पर न गेहूँ बेच पाए न धान। इसलिए उस छह प्रतिशत में या तो बड़ा किसान है या जिनकी लाठी में दम है। इसमें सामान्य किसान कहाँ हैं?

ऐसा भी नहीं है। 80 प्रतिशत खरीद पंजाब और हरियाणा में होती है। उसमें छह प्रतिशत जो हम गिन रहे हैं बहुतायत तो यहीं पर है। उत्तर प्रदेश में एक समय पर सात

प्रतिशत था। कभी–कभी सीजन के हिसाब से बढ़ जाता होगा। लेकिन अगर 10 प्रतिशत से भी कम खरीद होती है तो किसको दोष देंगे। उत्तर प्रदेश के किसान आकर पंजाब में गेहूँ और धान बेचते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश से आकर तो अकसर यहाँ बेचते हैं और कई बार उनके खिलाफ एफआईआर भी होती है। असल में वह गेहूँ और धान किसान नहीं बल्कि व्यापारी लेकर आता है। बिहार से लोग आकर पंजाब में बेचते हैं। पिछले साल तो नहीं, पर 2020 में 50 मिलियन टन धान आकर पंजाब में बिका।

मेरे सवाल का संदर्भ था कि उत्तर प्रदेश में जो थोड़ा बहुत एमएसपी पर बिक भी रहा है वह आम किसान का नहीं बिक रहा। इसमें कैसे बदलाव आएगा?

छोटे किसानों का नंबर तो आएगा ही नहीं। मुझे समझ नहीं आता कि उत्तर प्रदेश में इसका प्रयास क्यों नहीं हो रहा। मुझे याद है कि मायावती जब उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री थीं तब अपने कार्यकाल के अंतिम समय में उन्होंने दो हजार मंडियों का प्रावधान किया था। मुझे नहीं पता कि वह आज किस स्थिति में हैं। उस वक्त मैंने अपने लेख में लिखा था कि यह बहुत ही स्वागत योग्य कदम है, जो मायावती ने उठाया था। पूरे देश में लगभग सात हजार एपीएमसी मंडियाँ हैं। कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (सीएसीपी) के अनुसार अगर पाँच किलोमीटर पर मंडी का प्रावधान देना है किसान के लिए तो देश में 42 हजार मंडियाँ चाहिए। हम सड़कों पर सड़के बनाते जा रहे हैं। क्या हम उसमें से कुछ हिस्सा लेकर मंडियाँ नहीं बना सकते? क्या यह सार्वजनिक निवेश नहीं है? क्यों नहीं बनाया, क्योंकि प्राथमिकता नहीं थी। खेती की तरफ हमने कभी ध्यान नहीं दिया।

पंजाब और हरियाणा में मंडियों का जो ढाँचा है वह सरकारी खरीद वाला है। उत्तर प्रदेश में मंडी का जो ढाँचा है वह कमीशन एजेंट व आढ़ती के हवाले है। मंडी के किसी एक कोने में सरकारी खरीद केंद्र खुल जाता जाता है उसमें थोड़ी–बहुत खरीद हो जाती है, इस तरह वहाँ का ढाँचा एकदम अलग है, वहाँ जो मंडियाँ खुली भी हैं उसे बहुत कुछ लाभ किसानों को नहीं मिल रहा, इसमें कैसे सुधार लाया जा सकता है?

आपने जो बात कही है, यह बात किसने सोची थी। 1930 के दशक के शुरूआती दिनों की बात मैं कर रहा हूँ। सर छोटूराम ने कहा था कि खुदरा को व्यवस्थित करना पड़ेगा। उसे व्यवस्थित करने के लिए अच्छा यह है कि उसे विनियमित करिए। इसके लिए मंडियों का प्रावधान पुश किया था। सर छोटूराम जिस बात को कह रहे थे, आज हम कह रहे हैं कि उसका कोई मतलब ही नहीं है। आपने जो मंडियों के बारे में बताया उस पर मेरा मानना है कि कहीं न कहीं तो किसान को फसल लाने के लिए मंच चाहिए। आपने मंडी बना दी। उसके एक कोने में सरकारी खरीद रखी है। बाकी को कमीशन एजेंट के हवाले किया हुआ है। होना उलटा चाहिए। वहाँ भी विनियमन होना चाहिए। वह नहीं किया गया। वह इसलिए नही किया, क्योंकि देश की प्रमुख आर्थिक सोच कई वर्षों से मंडी व्यवस्था को खत्म करने की बात कहती आ रही है। कांग्रेस के शासनकाल में भी वहीं थी कि किसानों को मंडी से निकालिए। बाजार को मजबूत होने दीजिए। बाजार किसानों को अच्छा दाम देंगे। जैसा आपने खुद कहा कि 94 प्रतिशत किसानों को अच्छा दाम मिलता होता तो वे एमएसपी की वकालत क्यों करते?

देश में एमएसपी को विधिक अधिकार बनाने की माँग हो रही है। स्पेन और फ्रांस में ऐसे कानून बन चुके हैं। कुछ हद तक उसके कई सुखद परिणाम भी बताए जा रहे हैं तो यहाँ पर लागू करने में क्या दिक्कत है। स्पेन, फ्रांस और भारत की स्थिति में क्या अंतर है? विविध अधिकार जो प्रस्तावित था, उसमें किसको अधिकार मिल जाएगा, न्यायालय की प्रणाली क्या होगी, उस पर कितना बोझ बढ़ेगा, जैसी अनेक बातें की गईं। यह सब कितना प्रासंगिक था?

सरकार जो मार्केट रिफॉर्म्स ला रही थी, उस पर बहुत चर्चा हो चुकी है। लेकिन आपने अलग बात कही कि तय कीमत की माँग दुनिया भर में हो रही थी। यह सवाल अक्सर मुझसे पूछा गया कि आप कह रहे हो कि भारत में तय कीमत

मिलना चाहिए, लेकिन दुनिया के किस देश में तय कीमत मिल रही है। मैंने कहा कि हमारी सोच क्या यहीं तक सीमित है कि अगर दुनिया में कहीं नहीं हुआ तो हम नहीं करेंगे। यही मानसिकता सारी समस्या खड़ी कर रही है। दुनिया में कहीं नहीं हुआ तब भी हम अपने देश में एक तय कीमत लेकर आएं। कृषि को उठाने का तरीका एक ही है। हम अनिवार्य कर दें कि देश में इससे नीचे खरीद नहीं होगी। इससे नीचे एजेंट कोई खरीद नहीं करेंगे। अगर करेंगे तो वह गैरकानूनी है।

अध्ययन करते हुए मैंने स्पेन का उदाहरण लिया। स्पेन एक ऐसा देश है जहाँ 2020 में एक प्रावधान आया। वहाँ एमएसपी तो नहीं है, लेकिन जो उत्पादन लागत है उसके नीचे खरीद नही होनी चाहिए। यह उन्होंने गैरकानूनी कर दिया। स्पेन ने यह केवल कृषि में ही नहीं किया बल्कि वानिकी, मछली पालन और बागवानी में भी कर दिया। उसने इन सभी में कीमत तय कर दी कि इससे नीचे उत्पादन नहीं बिकेगा। वहाँ तो मंहगाई नहीं बढ़ी। ऐसा कोई कदम भारत में उठाने का प्रयास भी किया जाए तो यहाँ पहले ही आवाज शुरू हो जाती कि इससे तो मंहगाई बढ़ जाएगी। देश का क्या होगा? लेकिन स्पेन ने अच्छा फैसला लिया। उससे पहले फ्रांस ने किया। उसने सुपर मॉर्केट को कहा कि 10 प्रतिशत आपके दाम बढ़ा देते है ताकि आप किसान को उतना पैसा दे सकें। वह नहीं हो पाया, यह अलग बात है, लेकिन दाम तो बढ़ा दिये। उपभोक्ता मूल्य पर एक प्रतिशत फर्क पड़ा। भारत में तो बढ़ाने से पहले ही हाहाकार मच गया होता। अगर 10 प्रतिशत कीमत बढ़ा देते तो कितना बड़ा संकट खड़ा हो जाना था। सबसे अधिक वही लोग शोर करते जो खुद डीए उठाते हैं। फिर जर्मनी ने भी उसको फॉलो किया। यह तीन उदाहरण हमारे सामने हैं। अगर तीन देश इतनी हिम्मत कर सकते हैं तो भारत को भी कीमत तय कर देना चाहिए। यहाँ खेती को इसलिए भी समृद्ध करने की जरूरत है क्योंकि इससे देश का बड़ा वर्ग जुड़ा है। भारत अगर कीमत तय करता है तो सारी दुनिया में उसको फॉलो किया जाएगा, क्योंकि सारी दुनिया के किसान पीड़ित हैं।

उनको तय कीमत नहीं मिल रही। वे भारत की तरफ देख रहे हैं। इस बात को समझने के लिए कि आप कब करेंगे ताकि हम भी अपनी सरकार पर दबाव डाल सकें।

फल और सब्जियों के मामले में केरल में न्यूनतम मूल्य वाला मॉडल लागू हुआ और सफल भी हो रहा है तो अन्य राज्यों में क्यों नहीं हो सकता?

केरल में 16 सब्जियों पर न्यूनतम कीमत रखी गई है। उत्पादन लागत प्लस 20 प्रतिशत। उसके लिए 35 करोड़ रूपए का प्रावधान किया गया था। मतलब सरकार द्वारा तय कीमत से अगर नीचे कीमत गिरती है तो सरकार संभालेगी। कृषि विभाग के संबंधित अधिकारी उसको देखते हैं। वहाँ पर कीमतें मेनटेन हैं, क्योंकि जब बाजार को समझ आ जाता है कि सरकार कीमत नहीं गिरने देगी तो बाजार भी उसे लागू करना निश्चित करता हैं। इसी को हम कहते हैं कि बाजार, सरकार की नीति या फैसले पर बहुत ज्यादा निर्भर करता है। अगर एमएसपी न हो तो यहाँ किसानों को और भी कम कीमत मिलेगी। सब्जियों के मामले में केरल ने अगर फैसला किया तो बाकी राज्य उस क्यों नहीं लागू कर सकते? मुझे लगता है कि इसके लिए सीखना पड़ेगा। जानना पड़ेगा, लेकिन उसके लिए सोच होनी चाहिए कि हमें किसानों को सही कीमत देनी है।

अमूल वाला मॉडल क्या फलों और सब्जियों तक विस्तारित नहीं किया जाना चाहिए। जबकि यहाँ तो सहकारी मॉडल की वकालत की जा रही है। देश के नेता तो अक्सर करते ही रहते हैं।

अमूल का मॉडल है। देश में और भी मॉडल हैं। यहाँ उदाहरणों की कमी नहीं है। सहकारी मॉडल हो, केरला मॉडल हो या एमएसपी को सभी 23 फसलों पर लागू करना हो। इन फसलों पर एमएसपी हर साल घोषित होती है। उस व्यवस्था को लागू कराने (अभी गिनती की ही फसलें एमएसपी पर खरीदी जाती हैं) के लिए काम किया जा सकता है। वह करने के लिए आपकी सोच में आना चाहिए कि हमें यह करना है। आप

किसान को बाजार के हवाले छोड़ेंगे तो उसको वहाँ लिविंग इनकम नहीं मिलती। भारत ही नहीं दुनिया में नहीं मिलती। सभी जगह किसान त्रस्त हैं और रो रहे हैं।

1960 तक भारतवासियों को दो जून की रोटी के लाले थे, 1950–51 के मुकाबले 1920–21 तक कृषि ने छह गुना लंबी छलांग लगाई है। देश को अन्न के मामले में आत्मनिर्भर किसानों ने बनाया है, इसके बावजूद इस तरह की अनदेखी?

इसे समझने के लिए बड़े प्रतिबिंब में जाना पड़ेगा। लेकिन हमारी सोच कहती है कि कृषि जो है वह शहरी क्षेत्रों को महज सस्ते श्रम के रूप में मजदूर उपलब्ध कराएगी। यही एक सोच थी जिससे खेती को संकट के उस स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया, जिसकी हम आज बात कर रहे हैं। उस सोच से उबरने की जरूरत है। कृषि का काम सिर्फ सस्ता कच्चा माल उद्योग को देना नहीं है न उसका सस्ते मजदूर उपलब्ध कराने का काम है। देश को उस क्षेत्र को विकसित करना चाहिए था जिससे वह आज इंजन ऑफ ग्रोथ बनता। दरअसल कृषि और किसान देश के लिए आर्थिक सम्पदा का उत्पादन करते हैं। वह असल में धन निर्माता हैं। लेकिन क्या कारण है कि धन निर्माता आत्महत्या कर रहे हैं। मतलब साफ है कि कहीं न कहीं जो पैसा लगाने वालों की सोच है। जिस तरह से देश का सारा सिस्टम उनके लिए भाव रखता है। उनके लिए नीतियाँ बनाता है। वह नीतियाँ हम कृषि में क्यों नहीं ला सकते। अभी हम मानकर चलते हैं कि उद्योग विकास का इंजन है। लेकिन अब समय आ गया है कि कृषि को भी विकास का इंजन बनाना चाहिए। विकास के दो इंजन होने चाहिए। दोनों इंजन उद्योग और कृषि को फॉलो करना चाहिए।

आज बेरोजगारी का इतना गंभीर संकट है कि 900 मिलियन यानी 90 करोड़ लोग अब नौकरी करना ही नहीं चाहते। कहा जा रहा है कि उस 90 करोड़ का समावेश कृषि में है।

आज भी उनका एक पैर कृषि में है, जहाँ से उनके घर की खाद्य सुरक्षा पूरी होती है। बाकी वे कहीं भी काम करें। लेकिन जिस सेक्टर से उनके घर की खाद्य सुरक्षा पूरी होती है अगर उसमें हम निवेश करते तो कितना अच्छा होता। उसे केन्द्र में रखकर आर्थिक नीतियाँ बनाते। मेरा मानना है कि यह आने वाले समय में आर्थिक विकास के लिए प्रेरक शक्ति होती। हमने दुनिया भर में गलती की है कि रोजगार सृजन का मतलब कंपनियों में पैसा लगाइए। सरकारी नौकरी में लगाइए। इससे निकल कर कृषि में हमें आजीविका का निर्माण करना है। उसके साथ आधिकारिक तौर पर जो ग्रामीण उद्योग हैं; वे पनपेंगे। अगर हम इसका मॉडल बनाकर चलें तो भारत कृषि में नया वैश्विक मॉडल बनाएगा। इसका मतलब सिर्फ कृषि नहीं होगी। कृषि का रोल उसमें बड़ा होगा। इस तरह कृषि को आर्थिक विकास का दूसरा इंजन मानकर जब तक काम नहीं होगा तब तक सही मायने में आर्थिक विकास नहीं होगा। यह हमें मान लेना चाहिए।

रासायनिक खाद और कीटनाशक के जो परिणाम आ रहे हैं उससे हम सभी परिचित हैं। साइंस जनरल की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि जितना कीटनाशक का उपयोग करेगें उतनी ही अधिक मौंते होंगी। निकट भविष्य में और अधिक भयावह परिणाम देखने को मिलेंगे। इतने खतरनाक परिणाम सामने आ रहे हैं, लेकिन जो जागरूकता का स्तर है–चाहे वह बड़े किसान हों या छोटे किसान–वह दूर–दूर तक नहीं नजर आता। हरित क्रान्ति से लेकर आज तक इसे नजर अंदाज ही किया गया है। कैसे उससे निजात मिले?

1970 के दशक में जब हम विद्यार्थी थे तो उस समय एक पेपर पढ़ा था। मुझे अभी तक उसके लेखक का नाम याद है–प्रो. डेविड पाइमेंटल। पेपर का शीर्षक भी अब तक मुझे याद है। उसमें बताया गया था कि 99.9 प्रतिशत कीटनाशक पर्यावरण में जा रहा था। मात्र .01 प्रतिशत कीटनाशक तय लक्ष्य पर जाता था। उस समय हम विद्यार्थी अवश्य थे, लेकिन लिखने

का शौक था। मैंने लिखा कि यह वैज्ञानिक बता रहा है कि .01 प्रतिशत कीटनाश्क लक्ष्य को अटैक करता है, बाकी सारा पर्यावरण में जाता है। जमीन, पानी और हवा में जाता है। क्यों नहीं हम इससे रास्ता निकालने की कोशिश करते हैं। चेतावनी थी, लेकिन हमने ध्यान नहीं दिया। हरित क्रान्ति का मॉडल जिस कृषि के औद्योगिक मॉडल पर केन्द्रित था वही मॉडल इन चीजों को बढ़ावा दे रहा था। आज भी देख लीजिए। किसान आत्महत्याएं कर रहे हैं। क्या कभी बीज कंपनी का, रासायनिक खाद्य कंपनी का या कीटनाशक कंपनी का कोई आदमी आत्महत्या कर रहा है। जाहिर सी बात है कि नहीं कर रहा। लाभ सारा उनको जा रहा है और किसान आत्महत्या कर रहा। कहीं न कहीं तो गड़बड़ है। इस गड़बड़ी को समझने की जरूरत है।

हरित क्रान्ति में जो करना था, कर दिया। देश ने दावा किया कि पैदावार बढ़ सकती है, वही बढ़ी। हरित क्रान्ति में एक खास बात हुई कि जब भी इंडस्ट्री अपना मॉडल लेकर आती है तो वह एक पैकेज लाती है। उसे पता होता है कि इस चीज को बढ़ावा देने के लिए हमें यह–नीतिगत पहल करनी पड़ेगी। हरित क्रान्ति की तकनीक को बढ़ावा देने के लिए देश में एफसीआई का गठन किया गया। कृषि लागत और मूल्य आयोग (सीएसीपी) का गठन किया गया। क्योंकि जब पैदावार बढ़ती है तब फसलों की कटाई के समय कीमतों में गिरावट आती है। ऐसे में किसान दोबारा उस फसल को क्यों लगाएगा? किसान गेहूँ और धान की फसल लगाता रहे तो उसके लिए एमएसपी रखना पड़ा ताकि किसान के लिए प्रोत्साहन बना रहे। वह पॉलिसी डिजाइन था। दूसरा एफसीआई का गठन किया गया। देश में उतनी बड़ी मात्रा में अनाज आएगा। इतनी अधिक बोरियाँ आएंगी। उसकी सार संभाल कौन करेगा। उसे कोई तो मैनेज करेगा। किसी निजी सेक्टर की इतनी क्षमता नहीं है कि जितना देश में उत्पादन होता है उसको वह मैनेज कर पाए। इस तरह दो पॉलिसी हरित क्रान्ति

की पिलर थी। वह अभी तक चलती रहीं। ठीक है उसमें कई खामियाँ भी है। एक समय के बाद गिरावट आती है।

आज हम पर्यावरण के संकट में हैं। वह सारा आधिकारिक तौर पर वहीं से हैम्बल्ड करता था। कृषि की हरित क्रान्ति थी। आज नदियों का हाल देखिए। जमीन के स्वास्थ्य की बात करें। इनसेक्ट की बात करें। कैटसट्रफी इतनी जबरदस्त हो रही है कि माना जा रहा है 60 प्रतिशत इनसेक्ट खत्म हो गए हैं। यह अध्ययन कुछ दिन पहले हम पढ़ रहे थे। इससे पता चलता है कि हम कहाँ जा रहे हैं। एक बार एमएस स्वामीनाथन ने कहा था कि हमें एवर ग्रीन रेवोल्यूशन की ओर चलने की जरूरत है। जहाँ पर रासायनिक खाद और कीटनाशक का प्रयोग न के बराबर हो। यह पॉलिसी डिजाइन लाने की जरूरत है। वह उसी बड़ी सोच का हिस्सा होगा जो मैंने आपसे कहा था कि आर्थिक विकास का इंजन। उसमें आर्थिक विकास का इंजन बनाएं। साथ ही जो खेती करने का डिजाइन है, उस तरीके को भी बदलें। जिसको हम कहते है–खाद्य प्रणाली में बदलाव। उसकी तरफ आगे बढ़ें। ऐसा नहीं कि दुनिया में आज प्रयास नहीं हो रहे। भारत में ही आंध्र प्रदेश का उदाहरण देखना चाहिए। वहाँ इतना बड़ा कार्यक्रम चल रहा है जिसमें समुदाय की ओर से प्राकृतिक खेती प्रणाली संचालित की जा रही है। इसके अलावा कई राज्यों में छोटे–छोटे प्रयास हो रहे हैं।

यह प्रयास और अधिक हो, इसके लिए कृषि की मौजूदा नीतियों को बदलने की आवश्यकता है। इसलिए बदलने की आवश्यकता है। इसलिए बदलने की जरूरत है कि दुनिया में प्रति वर्ष 700 बिलियन डॉलर की सब्सिडी का जो ढाँचा है उसमें भी हमें शिफ्ट करना है। वह फोकस आकर प्राकृतिक खेती की ओर शिफ्ट हो। यह इतना मुश्किल नहीं है। यूरोपियन यूनियन हर साल सामान्य कृषि नीतियों के तहत बहुत सब्सिडी देती है, लेकिन अभी उसने एक अच्छा काम किया है। उसने तय किया कि 2024 तक जो कृषि को सब्सिडीज दी जानी है उसमें 20 प्रतिशत पारिस्थितिकी के रास्ते पर देंगे। यह बड़ा बदलाव

है। अगर यह यूरोप कर सकता है तो अमेरिका भी कर सकता है। भारत भी कर सकता है। चीन भी कर सकता है। इसलिए हमें उस तरफ बढ़ना है। वैसे चीन के राष्ट्रपति ने तो कई जगह कहा है कि अगर प्रकृति पर हमला करते हैं तो प्रकृति भी उसका प्रतिकार करती है। उन्होंने कहा है कि इस सदी को खेती में बड़े बदलाव की सदी होना चाहिए। वह कह रहे हैं तो उनको करके भी दिखाना चाहिए। अब दुनिया महसूस कर रही है कि क्लाइमेट चेंज ने सबके ऊपर मार लगाई है। उसे समझ आ रहा है कि औद्योगिक कृषि आगे नहीं चलेगी।

कई देशों में आर्गेनिक खाद्यान की माँग है। भारत में भी माँग बढ़ रही है। जगह–जगह उसके स्टॉल लग रहे हैं। आपने ही महाराष्ट तमिलनाडु और कर्नाटक में जो लोग आर्गेनिक खेती कर रहे हैं उनके बारे में लिखा है, लेकिन उसकी कीमत को लेकर उस पर हमला किया जा रहा है?

आप अपने परिवार में देख लीजिए। हम अपने परिवार में देख लें। सब गोलियाँ खाते हैं या इंजेक्शन लगवाते हैं। आज भारत का हर दूसरा आदमी दवाई पर जीवित है। हालात यह है कि बच्चा पैदा होता उसको टाइप वन डाइबिटीज होती है। सारी जिन्दगी शुगर रहती है। उसे अपनी फूड डाइट मेनटेन करनी है। टाइप टू डायबिटीज का इतना ज्यादा प्रकोप हो गया है कि दुनिया में यह एक बड़ा मुद्दा बन गया है। भूख की बात की जाती थी। वह अब कम है। मोटापा ज्यादा हो रहा है। इस व्यवस्था को अगर बदलना है तो खाने की आदतें बदलनी होंगी। उसे बदलने में उपभोक्ता का बहुत बड़ा रोल है। अपभोक्ता यह सोच कर बैठा है कि उसे सुन्दर पैकेट में जो बाजार में मिल रहा है वह ठीक है। अगर यह सोच है तो खाते रहिए। मोटापा बढ़ाते रहिए। बीमार होते रहिए। अगर उपभोक्ता माँग करेगा कि उसे सेफ फूड चाहिए। ऑर्गेनिक फूड चाहिए। हेल्दी फूड चाहिए तो बाजार उसे उपलब्ध कराएगा। किसान भी उसके पैदा करेगा। एक उदाहरण से इसे समझा जा सकता है। जब हम पत्रकारिता

की पढ़ाई कर रहे थे। उस समय एक उदाहरण दिया गया, जिसे कभी नहीं भूले। उस जमाने में निरमा साबुन आया था। अब तो आप सभी परिचित हैं। उस समय उसके पास इतना पैसा नहीं होगा कि आज की तरह आईपीएल का मैच प्रायोजित कर अपना प्रचार करता। लेकिन उसने एक नया तरीका बाजार में खोजा। हर नुक्कड़ पर पाँच–छह बेकार लोग यानी लड़के आवारागर्दी करते मिल जाते हैं। निरमा वालों ने तीन–चार–पाँच को इकट्ठा किया। पैसे भी दिए होंगे। उनका काम सिर्फ एक था कि हर किराने की दुकान में जाकर पूछो कि निरमा है। दुकानदार ने कहा कि यह क्या होता है? लड़के ने कहा कि साबुन होता है। दुकानदार ने तीन–चार–साबुन का नाम लिया। दिखाया कि यह ले लो। लड़के ने कहा कि नहीं। निरमा ही है असली साबुन। दुकानदार ने कहा– नहीं है। लड़का वापस आ गया। लेकिन जब तीन–चार लोग दिन भर में दुकान पर पहुँचे और उन्होंने निरमा माँगा तो उस दुकानदार ने भी निरमा रखना शुरू कर दिया। यही बात उपभोक्ता को खाने के मामले में समझनी है।

आप सुपर मार्केट में दुकानदार से पूछते हैं कि आपके पास आर्गेनिक है तो वह कहेगा नहीं है। लेकिन तीन–चार लोग उसको दिन भर में बोलेंगे तो आप मान लीजिए वह लाकर रखेगा। हम कई बार इस तरह के प्रयास करते हैं। हम अमूल की शुगर फ्री आइसक्रीम माँगते हैं। पहले कई बार उसने टरकाया। मना कर दिया। पर, कई लोग ने बोला तो वह उपलब्ध कराने लगा। इसलिए अगली क्रान्ति उपभोक्ता द्वारा होगी। अगर नहीं हुई और हम सब यह खाते रहे जो आजकल जंक फूड खा रहे हैं तो किसी को भी दोष मत देना। हर उपभेक्ता अगर अपना रोल नहीं निभाएगा। सही चीजों की माँग नहीं उभार सकेगा। खाने की आदतों को नहीं बदलवा सकेगा तो उसे किसी को दोष देने का हक नहीं है। उपभोक्ता का भी एक दायित्व है। इस बार उसको यह दायित्व दिखाना पड़ेगा। सचेत होना पड़ेगा। हर जगह वह आरोप लगाता है कि सरकार नहीं करती। कंपनियाँ नहीं करतीं।

मान लिया कि सरकार नहीं करती। कंपनियाँ नहीं करतीं, पर तुम तो कर सकते हो। मैंने कई बार कहा है कि अगली खेती में जो क्रान्ति आएगी, वह उपभोक्ता द्वारा होगी। पहली क्रान्ति किसानों द्वारा की गई थी, इस बार उपभोक्ता द्वारा होगी।

लखनऊ के एक बड़े फिजीशियन डॉ. पीके पाण्डेय हैं। वह हमारे पिता जी (अस्थमा रोग से पीड़ित) के डॉक्टर भी हैं। मूलतः पश्चिमी उत्तर प्रदेश के रहने वाले हैं। उनका कहना है कि उन्होंने अवध क्षेत्र को इसलिए केंद्र बनाया कि यहाँ रासायनिक खाद और कीटनाशक का इस्तेमाल नहीं होता था या काफी कम होता था, लेकिन अब देश का शायद ही कोई इलाका इससे बचा हो। वह एक दूसरी बात कहते हैं कि अधिकांश लोगों के घर के सामने इतनी तो जगह होती है कि वह एक पपीता का पौधा लगा लें, कुछ पौधे गमले में लगा लें, लेकिन लोग इतने आलसी हैं कि कुछ करना नहीं चाहते। रही–सही कसर जागरूकता का न होना पूरी कर देता है। क्या यही आपका भी मानना है?

यह सोच कर चलना कि जागरूकता लाना किसी का काम है, गलत है। परिवार और उपभोक्ताओं को खुद के प्रति जागरूक होना पड़ेगा। थोड़ी मेहनत करनी पड़ेगी। जानने का थोड़ा प्रयास करना होगा कि हमारे स्वास्थ्य के लिए क्या अच्छा है क्या बुरा। आप यह सोच रहे हैं कि मुँह में कोई और चमचा डालेगा, पूरी तरह गलत है। इसलिए उपभोक्ता को अपनी जिम्मेदारी उठानी पड़ेगी। कहा जाता है कि उपभोक्ता राजा है (कंज्यूमर इज किंग)। अगर वाकई वह अपने आपको राजा समझता है तो राजा जैसा उसे व्यवहार भी करना होगा। मतलब उसे समझना चाहिए। पढ़ना चाहिए। जागरूक होना चाहिए कि मेरी जो आदतें हैं। जिसके हिसाब से मैं खरीदारी करता हूँ, क्या मेरे लिए वह ठीक हैं या नहीं। ठीक नहीं होने के कारण ही दुनिया में आज स्वास्थ्य की समस्याएँ बढ़ रही है। जीवन शैली संबंधी बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं। यह सारी बातें खाने की आदतों से जुड़ी हैं और खाने की आदतें आपके हाथ में हैं।

इसलिए किसी को दोष मत दीजिए। मेरा कहना है कि अगर यह क्रान्ति आती तो सारा आरोप उपभोक्ता पर आना चाहिए, क्योंकि उसने अपनी आवाज नहीं उठाई। उसने मेहनत नहीं की। जैसा आपका सवाल डॉक्टर साहब के हवाले से था।

एक तकनीकी बिंदु आता है, जिसे आम तौर पर लोग नहीं जान पाते। मसलन–हमने अपने खेत में रायायनिक खाद और कीटनाशक का इस्तेमाल नहीं किया, लेकिन हमारे पड़ोसी खेत वाले ने खूब इस्तेमाल किया तो उस स्थिति में हमारे खेत में पैदा हुई फसल कितना आर्गेनिक रहेगी?

यह एक अलग विषय है। यह तकनीक में आ जाता है। हम यहाँ नीतियों पर बात कर रहे हैं। मेरा कहना है कि उन नीतियों को बनाएं जो कृषि पारिस्थितिकी प्रणाली वाली खेती की ओर लेकर जाती है। उपभोक्ता की जिम्मेदारी इसमें इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वह यह नहीं कह सकता कि मुझे तो यही दिया गया था। यह गलत सोच है। थोड़ी मेहनत करना सीखिए। जानिए कि मेरे परिवार में बीमारियाँ क्यों हो रही है? सुन्दर पैकिंग में खाने की चीजें बिक रही हैं। आप उसे लेकर आ जाते हैं। वह स्वास्थ्य के लिए उचित है या नहीं। यह जानकारी किए बिना अगर आप खा रहे हैं तो इसके लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। इसे आपको बदलना होगा। सरकार यह मदद कर सकती है कि जो परंपरागत खेती के तरीके हैं उसकी तरफ हम चलें। उसी तरफ बढ़ें, जिससे पर्यावरण का नुकसान न हो। खाद्य श्रृंखला का नुकसान न हो। ऐसा करने से दोनों चीजों का मिश्रण होगा। मैं बार–बार उपभोक्ताओं के लिए कह रहा हूँ कि अगली क्रान्ति जो है वह खाने की है। अगर वह उपभोक्ता के जरिए होगी तो उसमें सभी का रोल अहम है। चाहे हम पसंद करें या न करें, हम आर्गेनिक फूड की तरफ बढ़ रहे है। हेल्दी फूड की बात करते हैं। यह सब चीजें उपभोक्ता की माँग से जुड़ी है। उपभोक्ता को अपनी इस सोच के हिसाब से चलना चाहिए।

समस्याओं के समाधान के लिए आपने कमीशन फॉर फार्मर्स इनकम बनाने की बात कही है। साथ ही 18 हजार

रूपये हर महीने किसानों को मिलने की बात करते हैं, क्या इससे खेती–किसानी की समस्याओं का समाधान हो जाएगा?

मैंने एक बार कहा था कि किसानों की आय के लिए एक आयोग बनाना चाहिए। वही एक रास्ता है सभी मंत्रालय, केन्द्र सरकारें और राज्य सरकारें इस प्रयास में लगी रहती हैं कि उत्पादन कैसे बढ़ना है, लेकिन इनकम की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता। इनकम बहुत महत्वपूर्ण है। मैंने एक चीज 10–12 साल पहले और कही थी कि कृषि में सीधे इनकम की मदद देनी चाहिए। कई अर्थशास्त्रियों ने उस समय मुझे चुनौती दी थी कि यह संभव नहीं हो सकता। लेकिन मैं उसे बोलता रहा। रिपीट करता रहा कि कृषि के लिए सीधे इनकम की मदद देना जरूरी है। आपको याद होगा 2018 में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) सरकार पीएम किसान निधी योजना लेकर आई। वह उसी के ऊपर केन्द्रित है। मेरी तत्कालीन वित्त मंत्री अरूण जेटली से इस संबंध में कई बार बात हुई थी। उस योजना को उन्होंने तैयार किया। मुझे लगा था कि यह गैप भरने का रास्ता है। ठीक है, अभी छह हजार साल का है। कभी न कभी बढ़ जाएगा। इस तरह आप कीमतों की नीति से इनकम की नीति की तरफ जा रहे हैं। दूसरी बात – किसान आय कल्याण आयोग होना चाहिए हर राज्य स्तर पर भी होना चाहिए। अलग–अलग राज्यों में जो किसान आयोग हैं, उनको भी इसमें शामिल कर लेना चाहिए। किसानों की इनकम उस समय हमने 18 हजार रूपये महीने कही थी। यह 10–15 साल पहले की बात है। आज औसतन 25 हजार रूपये कैसे मिले, इसकी तरफ उस आयोग का ध्यान होना चाहिए। यह सबका अधिकार होना चाहिए।

तीसरा एमएसपी का रास्ता है। जिन 23 फसलों पर एमएसपी घोषित की जाती है उसको अनिवार्य कर देना चाहिए कि इससे नीचे खरीद नहीं होगी। बाजार उसके ऊपर खरीदे। यह मत सोचिए कि सारा सरकार खरीदेगी। बाजार के लिए एक लाइन तय कर दी जाए कि इसके ऊपर खरीदना है। जैसा आपने

कहा कि पंजाब में किसानों की धान और गेहूँ की खरीद होती है। तभी दूसरे राज्यों की तुलना में पंजाब के किसानों की इनकम ज्यादा है। बिहार में हम सब जानते हैं कि क्या हालात हैं। वहाँ एमएसपी नहीं है अथवा नहीं के बराबर है। ऐसे में नीतियों में बदलाव कर सारे देश में एमएसपी सुनिश्चित कर दी जाए। उससे नीचे कोई खरीद करता है तो उसको सजा होनी चाहिए।

चौथा तरीका सहकारिता मॉडल की तरफ जाने का है। जैसा आपने जिक्र किया था कि अगर हम अमूल में इतना बड़ा सहकारिता मॉडल बना सकते हैं तो उसी तर्ज पर दूसरे उत्पादन में भी बढ़ सकते हैं। वर्गीज कुरियन मुझे कहा करते थे कि देविन्दर थोड़ा इंतजार करो। मैं तिलहन में भी एक सहकारिता मॉडल लेकर आऊंगा। लेकिन अचानक उनका देहान्त हो गया। देश क्या अमूल के मॉडल को विस्तारित नहीं कर सकता? एक सहकारिता मॉडल फलों पर, एक सब्जी पर, एक तिलहन पर, एक दाल पर क्यों नहीं होना चाहिए। इस तरह का सहकारिता का ढाँचा बनाने के लिए शुरूआत करनी चाहिए। देश के पास प्रतिभाओं की कमी नहीं है। पर, इसके लिए सोच होनी चाहिए। हमारा ध्यान उस तरफ नहीं गया। यह चार चीजें अगर हम कर लेते हैं, करने के लिए तो और भी चीजें होंगी, पर चार चीजें करने से खेती संकट काफी हद तक दूर कर लेंगे।

जाते–जाते एक बात और कहनी है। ऊपर बताए गए कदमों के साथ विश्व के निर्देश की जरूरत नहीं है कि हम ईज फॉर डुइंग फॉर्मिंग इंडक्स बनाएं। देखिए ईज ऑफ डुइंग बिजनेस है, क्योंकि विश्व बैंक ने कहा और आपने कर दिया। फिर हम बड़े फख्र से कहते हैं कि उसके अंदर हमारी रेटिंग बढ़ती जा रही है। अब तो विश्व बैंक ने ही उसे हटा दिया। जब निर्मला सीतारमण वाणिज्य मंत्री थीं तो उन्होंने कहा था कि हमने सात हजार कदम उठाए हैं इंडस्ट्री के लिए। ईज डुइंग ऑफ डुइंग बिजनेस के लिए। कृषि में आप दो कदम ही उठा लीजिए। उसमें इतना बड़ा संकट है। कृषि में

70 प्रतिशत संकट प्रशासन की विफलता का है। मसलन–किसान मंडी में अनाज लेकर आया। वहाँ जिस कांटे पर अनाज तुलना है वह नहीं चल रहा है। किसान उसके लिए दो दिन से बैठा हुआ है कि कांटा ठीक हो। यह एक उदाहरण है। ऐसे अनेक उदाहरण इस कड़ी में मिल जाएंगे। आप ईज ऑफ डुइंग फॉर्मिंग क्यों नहीं कर सकते। विश्व बैंक का इंतजार क्यों करना चाहिए कि आप यह करिए। हम खुद क्यों नहीं कर सकते। देश में कृषि विश्वविद्यालयों की कमी नहीं है। लोग बड़े पैमाने पर कृषि से जुड़े हैं। उनकी कमी नहीं है। क्यों नहीं हम ईज ऑफ डुइंग इंडेक्स बनाएं और उस प्रणाली को दुरूस्त करें। उसे संचालित करें। यह अगर तीन–चार चीजें हो पाती हैं तो कृषि का उपचार बहुत हद तक दूर हो जाएगा।

प्रस्तुति : अभिषेक कुमार

परिश्रम की मिसाल है, जिन पर कर्जों के निशान हैं,
घर चलाने में खुद को, मिटा दिया,
और कोई नहीं वह किसान है।

जब खेतों में पसीना किसान का बहता है।
तब जाकर पेट इंसान का भरता है।

घातक होगा दबाव में विदेशी खाद्यान्न हेतु बाजार खोलना

ऐसे समय में जब अन्न फसले–गेहूँ और धान–की खेती अभी भी अपना वजूद बनाए हुए हैं, शेष लगभग सभी प्रमुख फसलों की चमक फीकी पड़ गई है। चाहे वह दालें हों, तिलहन (सोयाबीन सहित), कपास और मक्का, इनकी कीमतें तेजी से गिर रही हैं। खतरे की घंटियाँ इससे पहले इतनी जोर से कभी नहीं बजीं। वाणिज्य मंत्री पीयूष गोयल ने हाल ही में बर्लिन ग्लोबल डायलॉग को संबोधित करते हुए हिम्मत भरा रूख दिखाया है कि 'भारत सिर पर बंदूक तनवाकर' सौदे नहीं करता।

इस मुश्किल समय में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कहे गए ये साहसी शब्द मुझे उन दिनों की याद दिलाती हैं जब तत्कालीन कृषि मंत्री जगजीवन राम रोम में संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) के मुख्यालय में एक बैठक से गुस्से से बाहर निकल गए थे। यदि मैं उस वक्त के कृषि सचिव डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन ने मुझसे जो कहा था, उसे सही ढंग से बता पाऊं, तो उन्होंने एक वरिष्ठ अमेरिकी अधिकारी से कहा, 'भाड़ में जाओ तुम और तुम्हारी हमें कृषि निर्यात बेचने की नीयत' और आगे कहा : 'भारत कभी भी अमेरिका से खाद्यान्न आयात नहीं करेगा।' जगजीवन राम 1974 से 1977 तक कृषि एवं सिंचाई मंत्री रहे थे। यह स्वामीनाथन का जवाब था, जब मैंने उनसे पूछा कि आजादी के बाद से लगभग सभी कृषि मंत्रियों के साथ विभिन्न पदों पर काम करने का सौभाग्य मिलने के बाद उन्हें कौन–सा कृषि मंत्री सबसे अच्छा लगा।

इसलिए हमें याद रखना चाहिए कि अमेरिका हमेशा से विशाल भारतीय कृषि बाजार में पैर जमाने की हसरत रखता आया है। कोई आश्चर्य नहीं कि भारत में कृषि उत्पादों के लिए

प्रवेश पाना असल में अमेरिका की विदेश नीति की एक बड़ी इच्छा रही है। ऐसा हो नहीं पाया, लेकिन हाल ही में, जब ट्रंप का धक्केशाही वाले और सनकी तरीके से टैरिफ लगाना देशों को नई विश्व व्यवस्था अपनाने को मजबूर कर रहा है, भारत ने चल रही अमेरिका–भारत व्यापार वार्ताओं में अब तो अपनी कृषि, डेयरी और मत्स्य पालन क्षेत्रों की रक्षा के लिए बहादुरी से लड़ाई लड़ी है। लेकिन मजबूत घरेलू लॉबियाँ जो सदा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों के साथ खड़ी रहती है और वह भी आत्मनिर्भरता के नाम पर, एक बार फिर सक्रिय हो उठी है।

अमेरिका के साथ कपास, सोयाबीन, मक्का, डेयरी, सेब और अन्य स्टोन फ्रूट्स के लिए भारतीय आयात खोलने की जिस दलील को सबके लिए जीत वाला 'रणनीतिक' व्यापार सौदा बताया जा रहा है, उसमें घरेलू हकीकतों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। अगला लक्ष्य जाहिर तौर पर चावल होगा, उसके बाद गेहूँ, जिसमें अमेरिका का असली हित छिपा है। नीति आयोग ने पहले ही एक वर्किंग पेपर वापस ले लिया है, जिसमें विवादित जेनेटिकली मॉडिफाइड (जीएम) सेब, मक्का सोयाबीन को प्रवेश देने का मसौदा था, लेकिन कुछ दूसरे मुख्यधारा के अर्थशास्त्री भी हैं जो कपास पर जीरो ड्यूटी इंपोर्ट की तरह दूध एवं दुग्ध प्रोडक्ट्स के लिए भी भारतीय बाजार खोलने को सही मानते हैं। बिना यह अहसास किए कि अमेरिका में उगाने वाले किसान लगभग 8,000 हैं, जिनके खेतों का औसत आकार 600 हेक्टेयर है, उन्हें आज भी सालाना 100,000 डॉलर से ज्यादा की सब्सिडी मिलती है। इससे इनकी अंतर्राष्ट्रीय कीमतें कम हो जाती हैं, जिसकी वजह से विकासशील देशों के किसानों को नुकसान होता है। वहीं दूसरी ओर, भारत में 98 लाख कपास उगाने वाले किसान हैं, जिनके पास औसतन 1 से 3 एकड़ के खेत हैं। सस्ते और सब्सिडी पाए आयात से उनकी जो भी थोड़ी–बहुत कमाई है, वह भी छिन जाएगी। अगर घरेलू कपास उद्योग इसकी बजाय हमारे किसानों के

साथ खड़ा हो जाए, तब यह सच में एक 'विन–विन सिचुएशन' है। आयात शुल्क को शून्य करके, भारत ने स्वेच्छा से अपने किसानों को भेड़ियों के आगे डाल दिया है।

बात जब दालों की की जाए, तो माँग एवं पूर्ति वाला समीकरण काम करता दिखाई नहीं देता। पिछले पाँच सालों में, दालों की खेती का रकबा काफी कम हो गया है, जो कि 30.7 मिलियन हेक्टेयर से घटकर 27.6 मिलियन हेक्टेयर हो गया है, लेकिन फिर भी ज्यादा माँग के बावजूद; किसानों को मंडी में मिलने वाली कीमतें बढ़ी नहीं है। हकीकत यह है, मौजूदा कीमतें घोषित न्यूनतम समर्थन (एमएसपी) से लगभग 30 प्रतिशत कम हैं। उत्पादन में कमी को सस्ते आयात से पूरा किया जा रहा है; असल में यह जरूरत से दोगुनी मात्रा है, और कई फलीदार दालों (मटर नस्ल) पर आयात शुल्क शून्य है। अकेले 2024–25 में ही 7.6 मिलियन टन दालें आयात की गई हैं। खबरों के मुताबिक, पिछले पाँच सालों में यह लगभग चार गुणा हो गया है, जहाँ 2020–21 में दालों के आयात पर 12,153 करोड़ रूपये खर्च हुए थे वहीं 2024–25 में आयात की मात्रा पहले ही 47,000 करोड़ रूपये को पार कर चुकी है।

खाने के तेलों में आत्मनिर्भरता हासिल करने के नाम पर, जीएम सोयबीन इंपोर्ट को सही ठहराना, फिर से एक दिग्भ्रमित कोशिश है। हालांकि मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र के सोयाबीन काश्त पट्टी में किसान आश्वस्त कीमत पाने के लिए परेशान हैं, और पंचायत लेवल पर कई ट्रैक्टर विरोध प्रदर्शन हो रहे हैं, लेकिन सोयाबीन का मौजूदा मंडी भाव घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य 5,328 रूपये के बजाय 3,500 ये 4,000 रूपये प्रति क्विंटल के बीच है। आश्वस्त कीमत का नदारद रहने (और साथ ही मौसम की मार) के कारण बुवाई रकबे और उत्पादन में गिरावट आ रही है, जीएम सोयाबीन इंपोर्ट की खबरों का कड़ा विरोध हो रहा है। राजस्थान उच्च न्यायालय का हालिया आदेश, जिसमें केंद्र सरकार द्वारा नियम बनाए जाने तक जीएम खाद्यान्न के आयात और बिक्री पर रोक लगा दी है, एक अन्य रूकावट बनेगा।

यह मुझे उस समय की याद दिलाती है जब अमेरिका ने पहले भी जीएम सायोबीन आयात के लिए भारत पर दबाव डाला था। नई दिल्ली स्थित फोरम फॉर बायोटेक्नोलॉजी एंड फूड सिक्योरिटी के नेतृत्व में एक अभियान के बाद, इंडियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च (आईसीआर) ने आखिरकार भारतीय बंदरगाहों पर आने पर सोयाबीन की श्रेणियों को अलग–अलग करने के लिए कहा था। इसका अमेरिकी निर्यातकर्ताओं (वरिष्ठ यूएसडीए अधिकारियों के समर्थन से) ने पुरजोर विरोध किया, लेकिन भारत ने घरेलू जीएम नियामक व्यवस्था को दरकिनार कर झुकने से इनकार कर दिया था। यदि आयात किसी भी हाल में जरूरी हो जाए तो जीएम सोयाबीन आयात के लिए भी अब यही तरीका अपनाना चाहिए। इसी तरह, मक्का के मामले में भी, मीडिया खबरों के बाद कि आयात शुल्क मौजूदा 50 परसेंट से घटकर 15–16 प्रतिशत किया जा सकता है, घरेलू कीमतें पहले ही बहुत गिर गई हैं। खबरों के अनुसार 2,400 रूपये प्रति क्विंटल के घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य के मुकाबले, कुछ जगहों पर बाजार कीमतें गिरकर 1,100 से 1,200 रूपये प्रति क्विंटल तक आ गई हैं।

दूध के मामले में भी, भारत को कभी भी 'रणनीतिक' व्यापार फायदे के तहत प्रयोगबाजी नहीं करनी चाहिए, जैसे कि कुछ विशषेज्ञ सलाह दे रहे हैं, क्योंकि अमेरिका में भी, पिछले 15 सालों में 93 प्रतिशत छोटे डेयरी फार्म बंद हो गए हैं। फ्रांस में, डेयरी फार्मों को आर्थिक रूप से व्यवहार्य बनाए रखने के लिए दूध के लिए थोड़ी ज्यादा कीमत चुकाने के लिए एक मजबूत उपभोक्ता अभियान उठ खड़ा है।

भारत को उन दिनों में वापस नही जाने दिया जा सकता जब देश का पेट भरने के लिए खाद्यान्न समुद्री जहाजों से आया करता था। भूख से आजादी सुनिश्चित करने से ज्यादा जरूरी कुछ नहीं है, और वह भी किसी भी कीमत पर।

दैनिक ट्रिब्यून, 1 नवंबर, 2025

उपभोक्ताओं को सब्सिडी दे रहे हैं किसान

कई दशक पहले, प्रतिष्ठित प्रशासनिक अधिकारी एवं वैज्ञानिक डॉ. एमएम रंधावा ने एक लेख में किसानों और खेती के बारे में लोकप्रिय धारणा के बारे में बात की थी। एक किसान निस्संदेह बहुत मेहनती होता है। सर्दी हो, गर्मी हो या फिर बारिश आती हो; आप हमेशा उसे खेती में कड़ी मेहनत करते हुए देख सकते हैं। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि किसानों ने अपने श्रम से, पसीना बहाकर अकेले ही देश को भूख के जंजाल से बाहर निकाला है।

लेकिन डॉ. रंधावा को उस समय समाज में प्रचलित एक किसान की स्वीकृत छवि से परेशानी हुई। आम जन की कल्पना में, किसान एक सादी पोशाक पहनता है, अक्सर एक मैला कुर्त्ता व धोती पहनता है और टूटी–टांके लगी धूल–धूसरित जूती पहनकर चलता है। उम्मीद रहती है कि आने–जाने के लिए ज्यादा से ज्यादा साइकिल इस्तेमाल करता है, और जब भी आप उसे दोपहिया वाहन चलाते हुए देखते हैं, तो अक्सर भौंहें तन जाती है। हालाँकि अब वक्त बदल गया है लेकिन किसान और खेती के बारे में धारणा अब भी पूर्ववत ही कायम है।

साइकिल की जगह भले ही दोपहिया वाहन ले चुका है, जिसे अब कार द्वारा बदला जा चुका है, ऊपरी तबके में किसानों के पास कई बार शानदार मॉडल भी होते हैं, लेकिन एक पेशे के रूप में खेती के बारे में आम जन की सोच में बहुत बदलाव नहीं आया है। ग्रामीण–शहरी विभाजन का प्रतिबिंब, खेती अभी भी शहरी हाशिये पर चल रही है। मिसाल के तौर पर, यदि कोई किसान शहरी दायरे में प्रवेश करने की कोशिश करता है, तो उसे अभी भी नापसंद किया जाता है, और यहाँ तक कि

खान–पान के तौर–तरीके अपनाता है, जिसमें मिसाल के तौर पर पिज्जा खाना भी शामिल है। इसके अलावा, ऐसे समय में जब एक घरेलू सहायिका को अपने कार्यस्थल तक जाने को स्कूटी चलाते हुए देखना असामान्य नहीं है, एक किसान द्वारा ट्रैक्टर पर महंगे म्यूजिक सिस्टम का उपयोग करना मंजूर नहीं है।

असल में खेती एक दोयम दर्जा शब्द बन गया है। किसानों के प्रति इतनी उदासीनता है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) के लिए कानूनी गारंटी की माँग कर रहे प्रदर्शनकारी किसानों पर सवाल उठाने वाले प्रबल वृत्तांत के साथ ही तिरस्कार और अवमानना का भाव भी सामने आता है। विरोध कर रहे किसानों पर लगातार अपमानजनक शब्द कहे जा रहे हैं और मुख्यधारा के माध्यमों के साथ–साथ सोशल मीडिया पर भी अपमानजनक टिप्पणियाँ कृषक समुदाय के खिलाफ व्याप्त कुंठा के भावों का प्रतिबिंब है। आम तौर पर यह माना जाता है कि किसान बहुत पाला–पोसा जाता है, उन्हें भारी सब्सिडी व मुफ्त बिजली मिलती है, और वे इनकम टैक्स नहीं देतें। किसानों की आय में कोई भी वृद्धि उपभोक्ता कीमतों पर असर डालेगी। जिसके परिणामस्वरूप खाद्य मुद्रास्फीति बढ़ेगी इसलिए किसानों को बढ़ी हुई आय के अधिकार से वंचित करने पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

चारों ओर गलत सूचनाएं, और त्रुटिपूर्ण आर्थिक तर्क उछाले जा रहे है कि मिथक एवं वास्तविकता में भेद करना आसान नहीं। किसी भी मामले में, नीति–निर्माता, अर्थशास्त्री और मीडिया फैलाए जा चुके भ्रम से खुश लगते हैं। चाहे वह काल्पनिक खाद्य मुद्रास्फीति के आंकड़े हों या राष्ट्रीय खजाने पर संभावित वित्तीय बोझ, सभी प्रकार के संदिग्ध आंकड़े प्रचलित हैं। मूल मान्यता यह है कि किसानों की आय में कोई भी बढ़ोतरी बाजार को बिगाड़ देगी और इसके व्यापार और उद्योग के मुनाफे में कमी आएगी। हकीकत में, जो स्वाभाविक

से भी ज्यादा हो चुका है वह ये कि किसान को निरंतर गरीबी में रखने को लेकर देश संतुष्ट नजर आता है।

यदि किसान इतने लाड़ले होते तो मुझे कोई कारण नहीं दिखता कि औसत कृषि आय निम्नतम स्तर पर बनीं रहनी चाहिये थी। जो पहले कहा जा चुका है उसे दोहराने के जोखिम पर, कृषि परिवारों के लिए स्थितिजन्य आकलन सर्वेक्षण 2021 की नवीनतम रिपोर्ट की गणना के मुताबिक, कृषि परिवार की औसत मासिक आय 10,218 रूपये है। इससे यह भी पता चलता है कि खेती से होने वाली आय मनरेगा श्रमिकों की मासिक मजदूरी से भी कम थी। इससे भी बुरी बात, किसानों की स्थिति पर देश के एक अंग्रेजी दैनिक में बीती 23 फरवरी को प्रकाशित विवरण से पता चलता है कि पश्चिम बंगाल और ओडिशा जैसे राज्यों में औसत कृषि आय अभी भी कम है और 5,000 से 6,000 रूपये प्रति परिवार प्रति माह के बीच है। यहां तक कि आंध्र प्रदेश और तेलंगाना में भी, जहाँ 90 प्रतिशत से अधिक किसान परिवार कर्जदार हैं, आय बहुत कम है। एक अध्ययन में यह पता चला है कि आंध्र प्रदेश के कई सूखा प्रभावित जिलों में लगभग 14 प्रतिशत पारिवारिक आय सरकारी योजनाओं से आती है जिससे केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा प्रत्यक्ष आय मदद शामिल है।

इसके अलावा, जैसा कि कुछ दिन पूर्व पेश 2022–23 घरेलू खर्च सर्वेक्षण से पता चलता है कि एक पेशगत उद्यम के रूप में खेती कितनी अनिश्चित हो गई है, जिसमें कृषि परिवारों का खर्च ग्रामीण परिवारों से कम हो गया है। आय कम होने के कारण उपभोग कम है। इसलिए यह कहना कि किसान आयकर नहीं देते, उचित नहीं है। एक राष्ट्र के रूप में क्या यह हमारा कर्त्तव्य नहीं बनता कि हम सबसे पहले किसानों को कर योग्य आय दें?

किसी भी स्थिति में, यह उपभोक्ता केंद्रित नजरिया ही है जो असल में किसान को सही कीमत प्रदान करने से इनकार करता है। एक–दो साल को छोड़ दें तो व्यापार की शर्तें नकारात्मक रही हैं। कई अध्ययनों से सामने आया कि एक

दशक से ज्यादा वक्त ग्रामीण मजदूरी स्थिर है या फिर घट रही है। कृषक परिवारों के उपयोग स्तर से गिरावट भी यह इंगित करती है और फिर भी, जैसे ही उच्चतर एमएसपी घोषित किया जाता है, अखबारों के संपादकीय लगभग हर बार खाद्य मुद्रास्फीति में प्रत्याशित बढ़ोतरी से जोड़ने लगते हैं।

दरअसल, कृषि लागत और मूल्य आयोग यानी सीएसीपी द्वारा जिन 23 फसलों के लिए एमएसपी गणना करने के बाद उनकी कीमतों की घोषणा की जाती है, तो वह उनकी कीमतों की सिफारिश करने से पहले इनपुट–आउटपुट मूल्य समानता और बाजार कीमतों के रूझान पर गौर करता है। इसके अलावा, खाद्य मुद्रास्फीति को भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित जायज सीमा के भीतर रखने से, लोगों को अकसर यह अहसास नहीं होता है कि किसान वास्तव में उपभोक्ताओं और इस तरह देश की अर्थव्यवस्था को सब्सिडी देते हैं।

आर्थिक सहयोग और विकास संगठन यानी ओईसीडी के हालिया अध्ययन बताता है कि भारतीय किसान साल 2000 से घाटे की खेती कर रहे हैं, जिस वर्ष इसने उत्पादक–सब्सिडी मदद का आकलन करना शुरू किया था। किसानों को जो आर्थिक नुकसान हुआ है वह मार्केट में किसानों को मिलने वाली कीमत और सब्सिडी, कुछ राज्यों में फ्री बिजली मदद भी, को जोड़ने के बाद हुआ है। ओईसीडी डेटा यह भरपूर स्पष्ट करता है कि बाजार को कायम रखने के लिए, हमने जान–बूझकर खेती को कंगाल बनाए रखा है।

जब तक हम किसानों को मूलभूत जरूरतों से वंचित रखना जारी रखेंगे, तब तक डॉ. एमएस रंधावा द्वारा उकेरी गयी किसान की छवि बदलने वाली नहीं है। किसान को संकट से उबारने के लिए एमएसपी की गारंटी पहला कदम होगा, लेकिन उसे दशकों से हो रहे घाटे की पूर्ति करने के लिए और भी बहुत कुछ किए जाने की जरूरत है। जब तक किसानों और समाज के अन्य वर्गो के बीच आय में बराबरी यकीनी बनाने के प्रयास नहीं किये जाते तब तक किसान अपनी छवि से बाहर नहीं निकल सकता है।

दैनिक ट्रिब्यून, 12 मार्च, 2024

बढ़ी आमदनी लाएगी किसानों के लिए खुशहाली

पिछले लगभग पच्चीस सालों से बजट प्रस्तुत करते समय अमूमन प्रत्येक वित्त मंत्री अपने संबोधन की शुरूआत भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की महत्ती भूमिका का विशेष रूप से बखान करता आया है। बजटीय भाषणों में इसका गुणगान करने को वे 'किसान की आजादी' से लेकर खेती को देश की 'आर्थिकी की जीवनरेखा' बताने जैसे अनेक जुमले इस्तेमाल करते रहे। अरूण जेटली ने कृषि आय में बढ़ोतरी को सरकार की प्राथमिकता में एक बताया था। निर्मला सीतारमण ने भी कृषि आय में बढ़ोतरी को सरकार की प्राथमिकता में एक बताया था। निर्मला सीतारमण ने भी कृषि की महत्ता को मान्यता देते हुए इसे अपनी नौ मुख्य प्राथमिकताओं में एक बताकर सम्मानीय स्थान पर रखा है। लगभग हर बजट में जिस प्रकार कृषि को आगे बढ़ाने की बातें की गई, उसके मुताबिक तो अब तक ग्रामीण अर्थव्यवस्था की कायाकल्प हो चुकी होती। लेकिन 'ध्यान का केंद्र' ठहराए जाने के बावजूद एक बार भी ऐसा नहीं लगा कि कृषि उबरने की राह पर है। यह इसलिए क्योंकि अधिक जोर फसल उत्पादन बढ़ाने पर बना रहा–इस उम्मीद से कि इससे किसान को अधिक कीमत और आय मिल पाएगी–परंतु कृषि संत्रास उलटा और बढ़ता गया। यदि सफल हरित क्रांति और प्रत्येक बजटीय सहायताओं के बावजूद किसान की खेती से होने वाली औसत वार्षिक आय 10,218 रूपये जितनी है तो खेती पर गहराया गंभीर संकट से इनकार नहीं किया जा सकता।

यहाँ पर हकीकत की जाँच यह है : अनुमानों के अनुसार कर्नाटक में पिछले 15 महीनों में लगभग 1,182 किसानों को आत्महत्या करनी पड़ी है। वहीं महाराष्ट्र में इस साल जनवरी से जून के बीच 1,267 कृषकों को खुदकुशी करनी पड़ी, इसमें 557 मामले अकेले विदर्भ क्षेत्र से हैं।

किसानों द्वारा आत्महत्या कोई नया चलन नहीं है। राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो के पिछले 27 साल के रिकार्ड ऐसे मामलों की बहुत बड़ी संख्या दर्शाते हैं। जबकि यह काल वह था जिसमें हर साल बजट में कृषि के लिए पिछले साल से अधिक राशि का प्रावधान किया जाता रहा। वर्ष 1995 से 2014 के बीच, 2,96,438 कृषकों को अपना जीवन समाप्त करने का अतिशयी कदम उठाना पड़ा। वर्ष 2014 से 2022 के बीच यह आकंडा 1,00,474 रहा। सरल शब्दों में, 1995 से 2022 के मध्य लगभग 4 लाख किसानों ने आत्महत्या की है और वह भी ऐसे वक्त में जब हर साल में कृषि को उबारने का वादा किया जाता रहा। बजटीय राशि और कृषि संत्रास जारी रहने के बीच कोई मेल नहीं है।

तेलंगाना अब कृषि ऋणों को माफ करने के दूसरे चरण में है। इस प्रक्रिया में 6.4 लाख किसानों का 6.198 करोड़ रूपये कर्ज माफ किया जाएगा। जिसमें प्रत्येक किसान को कुल ऋण में 1.5 लाख रूपये की राहत मिलेगी। प्रथम चरण में, लगभग 11.34 लाख कृषकों के बैंक खाते में कुल 6,190 करोड़ रूपये डाले गए। तीसरे चरण में, जो हर महीने शुरू होगा, 17.75 लाख किसानों को 12,224 करोड़ रूपये की ऋण छूट मिलेगी। कुल मिलाकर, सूबे में 35.5 लाख किसानों को कर्ज में राहत मिलेगी। हालांकि, इसका यह मतलब नहीं कि अन्य राज्यों के लिए कृषक के सिर पर बढ़ता जा रहा कर्जा चिंता का विषय नहीं है।

आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (ओईसीडी) ने संसार की मुख्य अर्थव्यवस्थाओं द्वारा किसान को सब्सिडी के रूप में दी जाने वाली मदद का अध्ययन करने के बाद जो नवीनतम वैश्विक विश्लेषण पेश किया है, उसके अनुसार भारत ही एकमात्र देश है जिसका किसान अपने घाटा पूरा करने को यथेष्ट बजटीय प्रावधानों से महरूम है। यह रिपोर्ट बताती है कि भारतीय किसान वर्ष 2000 से साल–दर–साल घाटा खा रहा है। क्या अर्थव्यवस्था का कोई अन्य क्षेत्र लगातार होते घाटे में जीवित रह पाता?

भले ही हम कार्यविधि में खामियाँ ढूंढ़ें लेकिन तथ्य यही रहेगा कि तकनीक विकास की कितनी मदद करें या उत्पादकता बढ़ाने को अन्य योजनाओं को कितना भी धन दें, लेकिन इससे किसी किसान की व्यक्तिगत आय में बढ़ोतरी होने से रही। दुनिया में भी कहीं और ऐसा नहीं हो पाया। ओईसीडी का अध्ययन इस तथ्य पर मुहर लगता है।

यह वहीं है, जिसे आम बोलचाल की भाषा में 'वाया बठिंडा' कहते हैं अर्थात काम या उपाय व्यर्थ घुमा–फिराकर करना। क्यों नहीं हम कृषि आय में बढ़ोतरी के उपाय, इसमें प्रयुक्त अवयवों अथवा तकनीक के आपूर्तिकर्ताओं के माध्यम से करने के बजाय सीधी राह से करते? अनेकानेक अध्ययन दर्शाते हैं कि कैसे लगभग सारा मुनाफा आपूर्तिकर्ताओं की जेबों में चला जाता है और किसान वहीं का वहीं यानी सबसे निचले पायदान पर रह जाता है। यहाँ तक कि आपूर्ति श्रृंखला के मामले में भी, अंतिम छोर पर हुए खुदरा मुनाफे में किसान का हिस्सा महज 5–10 फीसदी या इससे कम रहता है। यूके में हुआ हालिया अध्ययन कहता है कि जहाँ स्ट्रॉबेरी और रसभरी के विपरण से खुदरा मुनाफा 2021 में बढ़कर 21 पेंस हो गया, वहीं इसमें किसान के हिस्से सिर्फ 3.5 पेंस आए। इससे पहले के कुछ अध्ययन दर्शाते हैं कि रोजमर्रा इस्तेमाल की जिन छह आवश्यक वस्तुओं पर कोई उपभोक्ता निर्भर है, किसान को उनसे प्राप्त खुदरा मुनाफे में केवल 1 फीसदी मिलता है। इसलिए, आपूर्ति श्रृंखला को सुदृढ़ करने पर जोर जरूरी है जैसा कि नवीनतम बजट में भी कहा गया है, यह तभी कारगर हो पाएगा यदि मुख्य उत्पादक यानि कृषक के अधिक हिस्से की गारंटी सुनिश्चित हो।

बजट में कृषि क्षेत्र के लिए कुल बजट का महज 3.15 प्रतिशत धन रखना, वह भी तब जब देश की लगभग आधी आबादी का रोजगार खेती हो, इससे कुछ अधिक प्राप्ति की उम्मीद नहीं की जा सकती। इस साल कृषि क्षेत्र के लिए 1.52 लाख करोड़ रूपये रखे गए हैं। पिछले साल के मुकाबले

इजाफा भले ही 26000 करोड़ रूपये अधिक है, किंतु आवश्यक रूप से गैर–योजनागत खर्चो के लिए है, पहले से चली आ रही योजनाओं के लिए। यह देखते हुए कि बजट में 60,000 करोड़ रूपये वह मद भी शामिल हैं, जो प्रधानमंत्री किसान निधि योजना के लिए है, जिसके तहत लाभार्थी किसान के बैंक खाते में प्रति माह 500 रूपये दिए जाते हैं, तब कृषि बजट हेतु पीछे केवल 92,000 करोड़ रहे। कोई हैरानी नहीं कि पारिवारिक उपभोग व्यय सूचकांक 2022–23 हमें बताता है कि ग्रामीण क्षेत्र में एक परिवार का मासिक औसतन व्यय महज 3,268 रूपये है। अगर खेती से आय व्यावहारिक नहीं होगी तो जाहिर है ग्रामीण इलाकों में लोग खरीद करने में कम पैसे खर्चेंगे।

इसलिए, कृषि की स्थिति पर गंभीर होकर नए सिरे से विचार करने की जरूरत है। सर्वप्रथम गौर जीवनयापन जैसे अति महत्वपूर्ण मुद्दे पर करना होगा ताकि खेती से आय समाज के अन्य तबकों जितनी हो पाए। इसके लेकर मेरा सुझाव है कि राष्ट्रीय कृषक आय एवं भलाई आयोग बनाया जाए, जो तयशुदा समय के भीतर, कृषि आय बढ़ाने के निश्चित उपाय बताए। इसकी शुरूआत न्यूनतम समर्थन मूल्य को कानूनन बाध्यता बनाकर की जाए।

दैनिक ट्रिब्यून, 3 अगस्त, 2024

कृषि बजट वृद्धि दिलाएगी ‘अरबपति राज’ से मुक्ति

भले ही वह विशुद्ध राजनीतिकरण कारणों से हो, भारत में धन के पुनः बंटवारे पर बहस बेहद महत्वपूर्ण है और वक्त की जरूरत भी। मुट्ठीभर अमीरों के हाथों में धन के केंद्रित होने की अप्रिय स्थिति की वजह से ‘अरबपति राज का उदय’ हुआ, जैसा कि पेरिस स्थित वर्ल्ड इनइक्विलिटी लैब ने इसे नाम दिया है। यह कथित ‘अरबपति राज’ निश्चित रूप से उद्यमशीलता के प्रति एनिमल स्पिरिट यानी जिंदादिली या भावनात्मक जोश के उजागर होने के कारण नहीं है लेकिन यह इस बात का दुखद परिदृश्य है कि कैसे कुछ लोगों के हक में आर्थिक नीतियों और संसाधनों को अनावश्यक रूप से सौंप दिया गया।

जॉन मेनार्ड केंज ने अपनी पुस्तक ‘द जनरल थ्योरी ऑफ एम्प्लॉयमेंट, इंटरेस्ट एंड मनी’ (1936) में ‘एनिमल स्पिरिट्स’ की व्याख्या उस असाधारण मानवीय व्यवहार के रूप में की है जो अनिश्चयपूर्ण दशाओं में निवेशकों को वित्तीय निर्णय लेने को प्रेरित करता है। पर संभवतया केंद्र को यह अहसास नहीं हो कि बहुसंख्यक आबादी को ऐसे ही अवसर से वंचित रखना असल में लाखों फूलों के खिलने के लिए जरूरी उत्साह और और ‘एनिमल रिपरिट’ को नष्ट करना है।

किसी भी मामले में, जहाँ केंद्र गलती पर है, वह यह हैं, कि मुट्ठी भर अरबपतियों का होना महत्वपूर्ण नहीं है, जिनकी संपत्ति एक अच्छी तरह से डिजाइन की गई उस मददगार प्रणाली के बल पर बढ़ती रहती है, जिसमें टैक्स छूट, बैंक ऋण बट्टे खाते में डालना और आर्थिक प्रोत्साहन पैकेज शामिल हैं। बल्कि उसी के समान संसाधनों को एक समतावादी समाज के निर्माण के लिए भी खर्च करना होगा जहाँ खुशी और संतुष्टि का राज हो। आखिरकार, संसाधन सीमित हैं और यह देखना अहम है कि इन्हें

कैसे वितरित किया जाता है। शायद यही वजह है कि नॉर्डिक क्षेत्र के 4 देशों स्वीडन, डेनमार्क, नॉर्वे और फिनलैंड बेहद अच्छा कर रहे हैं और खुशहाली की सूची में लगातार अव्वल रहते हैं।

एक दिन टीवी पर पैनल चर्चा के दौरान मुझसे पूछा गया कि यदि धन का पुनः वितरण करना पड़ा तो सरकार क्या कर सकती है। मेरा जवाब था कि लगता नहीं है कि अमीरों का धन छीनकर गरीबों में बांटने का कोई विचार हो। चाहिए क्या कि नीतियों और दृष्टिकोणों में पुनः बदलाव कर यह यकीनी बनाना होगा कि उनका लाभ देश के किसी हिस्से में मौजूद अंतिम व्यक्ति तक पहुँचे।

मेरा पहला सुझाव होगा यह यकीनी बनाना कि सालाना बजट का 50 फीसदी कृषि को दिया जाना चाहिये जो साल 2024 के लिए 47.66 लाख करोड़ है। जो मोटे तौर पर देश की आधी आबादी बनती है। खेती में आबादी का इतना बड़ा हिस्सा लगे होने के बावजूद वर्तमान में इस क्षेत्र को बजट आबंटन में 3 फीसदी से भी कम प्राप्त होता है। कृषि क्षेत्र में आप किसी चमत्कार की उम्मीद नहीं कर सकते हैं यदि उचित निवेश नहीं करते।

ऐसे देश में जहाँ सिर्फ 21 अरबपतियों के पास 700 मिलियन से अधिक–संपत्ति है, और जहाँ 64.3 प्रतिशत आबादी से 64.3 प्रतिशत जीएसटी आता है और शीर्ष 10 फीसदी से केवल 3–4 प्रतिशत ही आता है। जहाँ पहले से ही काफी निवेश किया जा चुका हो, वहाँ संसाधनों को लगाने में कोई आर्थिक समझदारी नहीं। इसके विपरीत, वित्तीय संसाधनों का समान और न्यायसंगत तरीके से पुनर्वितरण करना नितांत आवश्यक है। खेती में लगी 50 फीसदी आबादी को आर्थिक संसाधनों में उसके जायज हिस्से से क्यों वंचित किया जाए, जबकि लगातार सरकारें साल–दर–साल औद्योगिक क्षेत्र के लिए बड़े पैमाने पर बजटीय प्रावधान करती रही हैं।

मुझसे सवाल किया गया कि खेती से आमदन पर कोई टैक्स नहीं है, और वह इस सेक्टर के लिए बड़ी वित्तीय मदद है। वास्तव में, पैनल चर्चा में शामिल एक वेंचर कैपिटलिस्ट ने यहाँ तक पूछा कि अमीर किसानों पर कर क्यों नहीं लगाया जाना चाहिए, जबकि उन्हें यह अहसास नहीं था कि भारत में केवल 1 प्रतिशत कृषक समुदाय के पास ही 10 हेक्टेयर से ज्यादा जमीन है, और कृषक परिवारों के लिए स्थितिजन्य आकलन सर्वेक्षण, 2019 की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार शेष 99 प्रतिशत कृषक समुदाय की औसत आय लगभग 10,000 रूपये प्रति माह है। विडंबना है कि कॉर्पोरेट अर्थशास्त्रियों को कृषि क्षेत्र में व्याप्त संकट के बारे में बहुत कम जानकारी है, और वे अभी भी पुराने जमाने की आर्थिक सोच पर चलते हैं जो किसानों को शहरों में प्रवासी दिहाड़ी मजदूरों में शामिल होने के लिए प्रेरित करने पर आधारित थी।

एक अन्य पैनल चर्चा में, मैंने बताया कि कैसे कॉर्पोरेट कंपनियाँ पिछले वर्षो में 16 लाख करोड़ रूपये के बैंक राइट–ऑफ लेकर गयी हैं, और इसके साथ सितंबर 2019 से हर साल 1.45 लाख करोड़ रूपये की टैक्स कटौती दी गई है। इतना कि भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) ने बैंकों को जानबूझकर कर्ज न चुकाने वालों के साथ 'समझौता' करने का निर्देश दिया है, जिन पर 3.45 लाख करोड़ रूपये का बकाया है, और जिनके पास भुगतान करने के लिए संसाधन हैं लेकिन वे परवाह नहीं करते हैं। जिस तरह से किसानों को बैंक की किस्तें चुकाने में असमर्थ होने के चलते जेल में डाल दिया जाता है, उसी तरह 16,400 जानबूझकर कर्ज न चुकाने वालों को भी जेल की सजा होनी चाहिए थी। इसके बजाय उन्हें आसानी से छोड़ दिया गया। इस तरह के भारी राइट–ऑफ से अमीरों को जाहिर तौर पर राहत मिलता है। उनकी जीवनशैली हमेशा पूर्ववत चलती रहती है। यदि किसानों को भी ऐसी राहत राशि दी जाती है तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वे भी अपनी 'एनिमल स्पिरिट' का प्रदर्शन करने में सक्षम होंगे।

मई 1996 में जब वाजपेयी सरकार ने पहली बार शपथ ली, तब नई सरकार द्वारा अपनाए जाने वाले आर्थिक उपायों के बारे में सुझाव देने के लिए बुलाई गई अर्थशास्त्रियों की एक बैठक में मेरा सुझाव था कि कृषि में संलग्न 60 प्रतिशत आबादी के लिए वार्षिक बजट का 60 प्रतिशत प्रदान किया जाए, यदि विचार सत्ता विरोधी लहर से बचने का हो। (उस समय जनसंख्या का 60 प्रतिशत हिस्सा कृषि का था) यह बात अब भले ही भुला दी गई हो लेकिन वाजपेयी सरकार ने घोषणा की थी कि वह अपने बजट का 60 प्रतिशत हिस्सा कृषि के लिए समर्पित करेगी। यह एक ऐसा परिवर्तन कारी कदम होता जिसकी देश को तलाश थी। जहाँ तक मुझे याद है यह पहली बार था कि संसाधनों के पुनर्वितरण का प्रयास किया गया था। दुर्भाग्य से, सरकार 13 दिन में ही गिर गयी। यदि केवल वाजपेयी सरकार कायम रहती, कृषि पर बजट आबंटन में 60 फीसदी लगाने के नीतिगत फैसले से ग्रामीण अर्थव्यवस्था यकीनी तौर पर पुनर्जीवित होती, और उसके असर से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में तेजी आती। उसके चलते अब तक सबका साथ सबका विकास यकीनी बनता।

अब जबकि नव–उदारवाद हांफ रहा है, और अपने अंतिम चरण में है, ऐसे में धन के पुनः वितरण की किसी भी बात को अर्थशास्त्रियों के शासक वर्ग के कड़े विरोध का सामना करना पड़ेगा। उनसे घबराएं नहीं, बल्कि खड़े हो जाओ और अपनी राय से अवगत कराएं और विश्वास रखें कि धन का पुनः वितरण एक विचार है जिसका समय अब आ गया है।

दैनिक ट्रिब्यून, 7 मई, 2024

खेती लाभकारी बनी तो रूकेगा युवाओं का पलायन

पिछले 10 वर्षो में ग्रामीण मजदूरी स्थिर है या घटती रही है, और खेती घाटे का सौदा बनी हुई है। ऐसे में चुनावी नतीजों में किसानों का मोहभंग निश्चित रूप से झलकता है। सत्तासीन दल को न केवल किसानों के प्रति उपेक्षा और उदासीनता बल्कि उनके विरोध–प्रदर्शनों के समक्ष मनमानी और पुलिस दमन का भी परिणाम भुगतना पड़ा। बताते हैं कि पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और महाराष्ट्र से किसानों के प्रभाव वाले कम से कम 38 संसदीय सीटें कांग्रेस के खाते में गई है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने किसानों की दिक्कतों को स्वीकार किया, जब उन्होंने परिणाम के बाद भाजपा मुख्यालय में विजय भाषण में कहा : हम चीजों की खरीद के स्तर से लेकर बाजारों में बिक्री के स्तर तक कृषि को आधुनिक बनाने के कार्य को प्राथमिकता देते रहेगें। दालों से लेकर खाद्य तेलों तक, हम अपने किसानों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए लगातार काम करेंगे। लेकिन आगे बढ़ने से पहले, मुझे लगता है कि पहले यह समझना जरूरी है कि कृषि संकट नाकाफी आधुनिकीकरण के कारण है या इसलिए है कि कृषि को गारंटीशुदा कीमत न देने के सवाल पर आँखें मूंदकर नहीं बैठ सकते, ताकि पहले आजीविका के गंभीर मुद्दों पर ध्यान दिया जा सके।

इसे समझने के लिए हरियाणा का उदाहरण दिया जा सकता है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि हरियाणा ने कृषि उत्पादन के मामले में प्रभावशाली प्रदर्शन करने के लिए निश्चित रूप से लंबी छलांग लगाई है। न केवल खाद्यान से आत्मनिर्भर होने के कारण बल्कि इसने विभिन्न कृषि जिंसों में रिकॉर्ड प्रदर्शन किया है। कई साल तक हरियाणा केंद्रीय भंडार में सरप्लस गेहूँ और चावल का दूसरा सबसे बड़ा योगदान करने वाला राज्य रहा है। अब भी, सेंट्रल पूल में

अतिरिक्त फूड स्टॉक आपूर्ति में इसका हिस्सा 16 फीसदी है। कई विशेषज्ञ कहेंगे कि इसका समाधान फसल विविधीकरण में है। परंतु जो बात बड़ी आसानी से नजरअंदाज कर दी जाती है वो यह कि विविधीकरण के लिए पहली जरूरत है यह यकीनी बनाना कि मुहैया कराये जा रहे विकल्पों से होने वाली शुद्ध प्राप्ति किसानों को गेहूँ और धान फसल चक्र से होने वाली कमाई से कम न हो। हालांकि किसानों को गेहूँ और धान पर एमएसपी मिलता है, लेकिन यह अपेक्षित लागत और लाभप्रदता के अनुरूप नहीं होते हैं। किसी भी हालत में पहला कदम तो स्वामीनाथन कमीशन के फॉमूले के अनुसार कीमत गारंटी यकीनी बनाना होना चाहिए।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि सघन खेती की पद्धतियों के चलते कृषि कार्यों में स्थिरता का संकट है, लेकिन दशकों से कृषि आय में उत्तरोत्तर तीव्र गिरावट ने खेती को अलाभकारी बना दिया है। यह बात बड़े ही आराम से छुपा दी जाती है। हाल ही के वर्षो में हरियाण ाा के युवाओं में पैदा हुई प्रवास की ललक ग्रामीण परिवेश में छाये संकट का सबूत है। किसी भी गाँव में चले जाइये, आपको किस्से सुनने को मिलेगा कि विदेश के सपनों को पूरा करने के लिए जमीन बेची जा रही है। खेती से ज्यादा कुछ नहीं प्राप्त हो रहा, और शहरों में जॉब के अवसर सीमित होने के चलते किसानों के पास जमीन बेचकर अपने बच्चों को विदेश भेजने के अलावा विकल्प कम ही बचता है। यहाँ तक कि बच्चों को विदेश भेजने का क्रेज अनुसुचित जाति के परिवारों में भी बढ़ रहा है, जिनमें से कई ने तो बच्चों को बाहर भेजने के लिए भारी–भरकम कर्ज भी लिया है। कैथल जिले के धेरड़ गाँव के 70 वर्षीय किसान मीडिया को गर्व से बताते हैं, 'हमारे गाँव से ज्यादातर लड़के जा चुके है। यहाँ पीछे केवल उनके अभिभावक ही रहते हैं। हमारे गाँव में कुल 1100 वोट है। और यदि सभी लोग वोट डाले तो भी 800 से अधिक नहीं बनेगी। बाकी तो बाहर चले गये हैं।' जगह–जगह लगे दिखाई दे रहे आइल्ट्स

कोर्सेज के साइन–बोर्ड, और युवाओं को झटपट वीजा व रोजगार दिलाने को लेकर लुभाते बिलवोड्स एक चिंताजनक प्रवृति है। विदेश में रोजगार की ललक यहाँ तक है कि हरियाणा से बड़ी तादाद में उम्मीदवार युद्ध ग्रस्त इजराइल में कम वेतन वाली नौकरियों के लिए पहुँचे, बावजूद इस जानकारी के कि वहाँ उनकी जान का खतरा है। यहाँ तक कि जान जोखिम में डालने वाली नौकरियों के लिए भी बेताबी साफ नजर आती है। निश्चित तौर पर कोई असहमत हो सकता है परंतु यह परेशान करने वाला प्रवास का रूझान पलट सकता था यदि कृषि आर्थिक तौर पर व्यवहार्य और लाभकारी उद्यम के रूप में उभर जाती। दरअसल, हर कोई कृषि में स्थिरता और आर्थिक जीवनी–शक्ति के संकट से बाहर निकलने के समाधान के तौर पर फसल विविधीकरण की बात करता है, लेकिन यह किसानों के लिए कारगर नहीं हो रहा हैं। भिवानी जिले के तोशाम निवासी एक टमाटर उत्पादक है रमेश पंचाल। वे करीब 42 एकड़ में टमाटर की खेती करते हैं। जिसमें वे अधिकांश जमीन ठेके पर ली गयी है। उनके द्वारा प्रदर्शित उद्यमिता के तरीके के चलते वे हरियाणा के टमाटर किंग के तौर पर विख्यात हैं।

कुछ ही दिन पहले, उन्होंने नई दिल्ली की गाजीपुर सब्जी मंडी में टमाटर की 351 पेटियाँ बेचीं जिनमें प्रत्येक में 26 किलो टमाटर थे। कुल मिलाकर, उन्होंने उस दिन 9,126 किलो टमाटर बेचे। उन्हें मिलने वाले कुल मूल्य में से टमाटर तोड़ने, परिवहन और मंडी के खर्चो को पटाने के बाद उन्हें केवल 1.48 रूपये प्रति किलो का शुद्ध लाभ हुआ। ऐसे वक्त जब एक उपभोक्ता टमाटर को प्रति किलोग्राम करीब 40 रूपये कीमत औसतन अदा करता है, रमेश का गुस्सा फूटता है। वे मुझसे पूछते हैं, 'बताइये, कैसे आप एक किसान से गुजारा करने की उम्मीद करेगें', आगे कहते हैंः 'विविधीकरण के बारे में बात करने का फैशन हो गया है। सरकारी अधिकारी किसानों को विविधता के लिए गेहूँ–धान के टमाटर समेत दूसरे विकल्प अपनाने को प्रेरित करते हैं। परंतु यदि टमाटर को खेती की खेती

करने से मुझे यही शुद्ध आय प्राप्त होती है, और ऐसा भी नहीं हो कि दूसरी फसले इतनी आमदन नहीं देती हो तो किसानों को विविधीकरण किसलिए करना चाहिए?'

टमाटर ही अकेली ऐसी फसल नहीं है जो किसान लागत पूरी करने में असमर्थ है। परंतु अन्य विभिन्न उदाहरणों पर नजर डालने से पूर्व, मैं आपको इस बारे में एक उदाहरण दे दूं कि खेती कितनी गैर–फायदेमंद हो चुकी है। हिसार स्थित सीसीएस हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के डॉ. विनय मेहता का अध्ययन इस बारे में आँखें खोलने वाला है। यह स्पष्ट तौर पर दर्शाता है कि कृषि लगातार एक पतली डोर से अनिश्चित रूप से लटकी हुई है। यह सर्वविदित था कि कृषि आप पिरामिड के निचले स्तर पर हैं, लेकिन यह अध्ययन चौकाने वाला है। इसके अनुसार, छोटे किसानों पर हर साल औसत 1.31 लाख रूपये का कर्ज होता है

निरसंदेह, किसानों के कल्याण को उस तरह का ध्यान और प्राथमिकता नहीं मिली जिसके वे हकदार थे। यदि कृषि एक घाटे वाली गतिविधि है, जैसा कि अध्ययन बताता है, तो नई योजनाओं की घोषणा करना या परिष्कृत तकनीक पेश करना व्यर्थ है, जो खेती को आर्थिक व्यवहार्यता के गहरे संकट से बाहर निकालने में मदद कर सकता है। सरकार का जोर तुरंत कृषि आय बढ़ाने के तरीके और साधन खोजने पर केंद्रित होना चाहिए। कृषि आय में गिरावट इसलिए नहीं है कि किसान मेहनती और उद्यमशील नहीं है, ऐसा सिर्फ इसलिए है कि जब किसान खेती कर रहे होते हैं तो उन्हें इस काम में हो रहे घाटे का अहसास नहीं होता है।

इसलिए एनडीए की नयी गठबंधन सरकार को खेती–किसानी के मोर्चे पर जारी गड़बड़ी पर नये सिरे से विचार करना चाहिए। अब 75 से भी अधिक वर्षो से विभिन्न उपायों से कृषि उत्पादन बढ़ा है लेकिन कृषि संकट गहराता जा रहा है। साल 2047 तक विकसित भारत के स्वप्न को साकार करने के लिए खेती को लाभदायक व आर्थिक तौर पर व्यवहार्य बनाना जरूरी है।

दैनिक ट्रिब्यून, 15 जून, 2024

किसानों पर शिकंजे जैसा है 'फ्री ट्रेड' फार्मूला

मुक्त व्यापार कभी भी निष्पक्ष नहीं रहा। पहले की 'फेयर एंड लवली' क्रीम, जिसे अब 'ग्लो एंड लवली' नाम दिया गया है, की तरह फ्री ट्रेड दुनिया भर के बड़े कारोबारों को आसानी से आकर्षित कर सकता है ताकि ग्लोबल साउथ के देशों यानी गरीब व विकासशील देशों को इसकी विशाल आर्थिक क्षमता पर विश्वास हो सके। विवादास्पद 'फेयर एंड लवली' क्रीम ने भी त्वचा को कथित गोरा करने वाले कॉस्मेस्टिक उत्पाद के साथ ऐसा ही किया। 'गोरे को सुंदर' और 'साँवले' को बदसूरत समझना सांवली त्वचा वाले लोगों का उपहास करने जैसा था और अंततः कंपनी को जनता के दबाव के आगे झुकना पड़ा।

मुक्त व्यापार को लेकर दबाव का सिलसिला बढ़ता जा रहा है। इस साल की शुरूआत में यूरोप में विशाल किसान आंदोलन हुए। 27 यूरोपीय देशों में से 24 किसी न किसी स्तर पर विरोध का सामना कर रहे हैं। इन आंदोलनों में फ्री ट्रेड एग्रीमेंटस (एफटीए) को 'उखाड़ फेकने' का आह्वान कर रहे थे जिसकी वजह से यूरोप में भोजन व फल–सब्जियाँ सस्ते हो गये व घरेलू किसानों को आजीविका सुरक्षित करना मुश्किल हो रहा था।

फ्रांस अकेले अपनी फल और सब्जी की जरूरत का 71 फीसदी आयात करता है। भारत में, किसान आंदोलन 2.0 मुख्य रूप से कृषि उपज के लिए कानूनन बाध्यकारी न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) की माँग कर रहा है, और इसकी अन्य माँगों में भारत को विश्व व्यापार संगठन (डब्यूटीओ) से हटने के लिए कहना भी शामिल है।

इस लेख में अमेरिका द्वारा हाल ही में अपनाए गये उस कड़े कदम का विश्लेषण करने का प्रयास किया जाएगा जो विकासशील देशों में बाजार की पकड़ और ज्यादा मजबूत करने को लेकर है। अमेरिका की तो हमेशा से विकासशील देशों के

बाजार में पहुँच बनाने की तीव्र इच्छा रही है। जिसमें ध्यान का केंद्र स्वाभाविक तौर पर भारत का विशाल बाजार रहा है।

अमेरिका वित्त समिति की हालिया सुनवाई में, सीनेटरों के सवालों का जवाब देते हुए, अमेरिकी व्यापार प्रतिनिधि (यूएसटीआर) कैथरीन टाई ने कहा 'हम कड़ी मेहनत करने वाले अमेरिकी परिवारों और समुदायों, विशेष रूप से हमारे ग्रामीण समुदायों के लिए बाजार खोल रहे हैं। बातचीत के माध्यम से, हमारे प्रशासन ने पिछले तीन वर्षो में नए कृषि बाजारों तक 21 बिलियन अमेरिकी डॉलर से अधिक की पहुँच सुनिश्चित की है,' और आगे कहा, 'इसमें वृद्धिमान बाजार, भारत के साथ 12 टैरिफ श्रेणियाँ शामिल है जो अमेरिकी निर्यातकों के लिए तरक्की का मौका है।'

हालाँकि मेहनतकश अमेरिकी परिवारों और ग्रामीण समुदायों की सुरक्षा को लेकर अमेरिका की रूचि समझी जा सकती है लेकिन भूमंडलीकरण के तहत हर देश को उन दसियों हजारों किसानों की आजीविका की भी रक्षा करनी चाहिए जो दुनिया के किसी और हिस्से में सस्ते आयातों के चलते तबाह हो जाते हैं। यह न भूलें कि भोजन का आयात करना बेरोजगारी का आयात करने के समान है।

मुझे याद है कि मैंने जर्मन किसानों से भी कमोबेश इसी तरह का प्रश्न पूछा था, जो दक्षिणी जर्मनी के लैंड्सफुहल में एक फार्म हाउस में डिनर के दौरान जीएटीटी निर्यातकों के एक छोटे समूह से मिलने आए थे (मेरी पुस्तकः गैट टू डब्ल्यूटीओः निराशा के बीज 1995, कोणार्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली) यह 1990 के दशक के मध्य में किसी समय का बकाया है। मानता हूँ कि आप सरप्लस खाद्यान का उत्पादन करते हैं जिसके लिए आप दक्षिण में एक स्थाई बाजार की तलाश कर रहें हैं। लेकिन शायद आपको इस बात का अहसास नहीं है कि आप यहाँ जो सरप्लस अनाज पैदा करेंगे, वह भारत जैसे देशों में लाखों छोटे और सीमांत किसानों को उनके खेतों से दूर कर देगा। उन व्यापार वार्त्ताकारों के उलट, जो नष्ट हो रही कृषि आजीविका

के बारे में दूर–दूर तक चिंतित हुए बिना, आजकल व्यापार वार्त्ता की अगुवाई करते हैं, मुझे वहाँ किसानों से जो उत्तर मिला, वह अत्यधिक समर्थन प्रदान करने वाला था। भारतीय किसानों के साथ एकजुटता व्यक्त करते हुए उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि उन्हें इस बात की जानकारी नहीं थी कि उनका अधिशेष खाद्यान भारत में आजिविका को नष्ट कर देगा। जर्मनवासी किसान भारतीय किसानों की पीड़ा को समझ सकते थे और इसलिए चाहते थे कि सुधारात्मक कदम उठाए जाएं।

मैंने सोचा कि अमेरिका को भी उस असर का आकलन करना चाहिए जो बादाम, अखरोट और सेब समेत अन्य चीजों पर प्रतिरोधात्मक आयात शुल्क वापस लेने के बाद भारत पर पड़ेगा। चलो यहाँ सेब की बात करते हैं। समाचार रिर्पोट के अनुसार, 20 फीसदी आयात शुल्क वृद्धि वापस लेने के बाद जब पहली खेप भारत के लिए रवाना हुई तो सिएटल बंदरगाह पर उत्सव मनाया गया। जाहिर है, भारत वाशिंगटन के सेब के लिए 120 मिलियन डालर का बाजार प्रदान करता है, जिससे अमेरिका में 68,000 सेब उत्पादक किसानों को लाभ होगा। रिपोर्ट के मुताबिक, नवंबर 2023 में आपात शुल्क आंशिक रूप से वापस लेने के एक महीने के भीतर 19.5 मिलियन डॉलर मूल्य के वाशिंगटन सेब भारत भेजे गए।

जैसा कि उम्मीद थी, यूएएस कांग्रेस की सुनवाई में एक सीनेटर को यह कहते हुए उद्धत किया गया था कि भारतीय गेहूँ सब्सिडी कीमतों को बिगाड़ रही है। एक अन्य सीनेटर ने चावल सब्सिडी के बारे में बात की। उन्होंने कहा कि अगर चावल सब्सिडी डव्ल्यूटीओ के मापंदडो के भीतर होती, तो इससे अमेरिकी धान किसानों के लिए 850 मिलियन डॉलर के व्यापार के अवसर खुल जाते। यदि आपका आंदोलन सही है, तो ये सीनेटर भारत में एमएसपी व्यवस्था पर सवाल उठा रहे हैं जिसके तहत खासकर पंजाब और हरियाणा में गहूँ और चावल उत्पादक किसान, उच्च सुनिश्चित कीमतों से लाभान्वित होते हैं। अमेरिका ने बार–बार कहा कि भारत किसानों को

उत्पाद–विशेष के लिए समर्थन की 10 प्रतिशत की सीमा से अधिक एमएसपी भुगतान करके डब्ल्यूटीओ की शर्तों का उल्लंधन करता है।

आश्चर्यजनक तौर पर, ये आरोप बार–बार उस देश द्वारा लगाये जाते हैं जो दुनियाभर के कपास उत्पादकों को हानि पहुँचाने के लिए अपने देश के कपास उत्पादकों को दी जाने वाली भारी–भरकम सब्सिडी को बंद करने में विफल रहा हो। जरा तुलना ही करे तो, नई दिल्ली स्थित डब्ल्यूटीओ अध्ययन केंद्र के अनुसार, अमेरिका अपने 8,100 कपास उत्पादकों को प्रति किसान 117,494 डॉलर की घरेलू मदद प्रदान करता है। इसके विपरीत, 9 मिलियन से अधिक संख्या वाले भारतीय कपास उत्पादकों को प्रति किसान मामूली 27 डालर मिलते हैं। अमेरिका द्वारा अपने किसानों को प्रदान की जाने वाली कपास सब्सिडी का विवादास्पद मुद्दा पश्चिमी अफ्रीका के देशों और भारत में लाखों कृषकों की आजीविका को खास करने के लिए जाना जाता है, साल 2003 में असफल कैनकन डब्ल्यूटीओ मंत्री स्तरीय सम्मेलन में एक प्रमुख मुद्दे के रूप में सामने आने के वक्त से अनसुलझा बना हुआ है।

मुझे यह भी अजीब लगता है कि जब अमेरिकी सीनेटर उस हालत में भारत के झींगा उद्योग में बाल मजदूरी पर सवाल उठाते हैं जब अमेरिकी कृषि क्षेत्र सैकड़ों की तादाद में 18 साल से कम उम्र के बच्चों को नियुक्त करने के लिए जाना जाता है, और कुछ तो 10–12 वर्ष की नाजुक उम्र में वाणिज्यिक फार्म्स में श्रम करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की तरह, मैं भी संसार में कहीं भी खेती के काम में बालश्रम का विरोधी हूँ। लेकिन जब खेती के कार्य में बाल श्रमिकों को लगाने की बात आती है तो अमेरिका भी इससे अछूता नहीं। यह निष्पक्ष स्थिति नहीं जो स्वतंत्र व्यापार सुनिश्चित करती हो। फ्री ट्रेड का अपने आप में यह मतलब नहीं कि यह 'फेयर और लवली' है।

दैनिक ट्रिब्यून, 30 अप्रैल, 2024

मूल्य अंतर राहत के बजाय मिले गारंटीशुदा कीमत

सबसे पहले, अच्छी खबर। राजनीति को एक तरफ रखते हुए, छत्तीसगढ़ के किसानों के पास खुश होने के लिए पर्याप्त कारण हैं। गत 12 मार्च को छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री विष्णुदेव साय ने राज्य के 24.72 लाख धान किसानों के बैंक खातों में 13,320 करोड़ रूपये ट्रांसफर किए। यह राशि धान किसानों को कमीपूरक भुगतान के रूप में देय थी। पिछले चुनावों से पहले किए गए वादे के अनुसार, सत्तारूढ़ भाजपा ने खरीफ 2023–24 सीजन के लिए कॉमन ग्रेड धान के लिए 2,183 रूपये प्रति क्विंटल और ए ग्रेड धान के लिए 2,203 रूपये के खरीद मूल्य पर प्रत्येक किसान से 21 क्विंटल धान खरीदा था।

3,100 रूपये प्रति क्विंटल के खरीद मूल्य के वादे और केन्द्र द्वारा एमएसपी मूल्य पर खरीद के वादे के बीच 917 रूपये प्रति क्विंटल का अंतर अब किसानों के खाते में डाल दिया गया है। यानी प्रतिवर्ष औसत किसान की आय में 1 लाख रूपये की वृद्धि होगी। इस साल लगभग 147 लाख टन की रिकार्ड खरीद के साथ, किसान निश्चित रूप से बहुत उत्साहित है। हालिया स्थितिजन्य आकलन सर्वे के अनुसार, छत्तीसगढ़ में एक किसान परिवार की औसत मासिक आय 9,677 रूपये है। इसलिए प्रतिवर्ष करीब 1 लाख रूपये की अतिरिक्त आय किसान परिवारों के लिए एक महत्वपूर्ण छलांग है।

यह निर्णय ऐसे समय में आया है जब संयुक्त किसान मोर्चा (एसकेएम) द्वारा गत 14 मार्च को नई दिल्ली में किसान महापंचायत ने सभी फसलों के लिए एमएसपी की कानूनी गांरटी की माँग को जारी रखने का संकल्प लिया है। स्वामीनाथन के सी2+50 प्रतिशत फार्मूले के अनुसार एमएसपी की गणना की मांग के मुकाबले, छत्तीसगढ़ सरकार ने 3,100 रूपये प्रति,

क्विंटल का खरीद मूल्य का भुगतान किया है, जो असल में डॉ. स्वामीनाथन की अध्यक्षता वाले राष्ट्रीय किसान आयोग द्वारा की गयी सिफारिश से भी अधिक है। दूसरी ओर, किसान यूनियनें कहती रही हैं कि कृषि लागत और मूल्य आयोग (सीएसीपी) द्वारा तय किए गए एमएसपी 2,183 रूपये प्रति क्विंटल पर देशभर में धान की खरीद 2+50 प्रतिशत फार्मूले के जरिये की जाती है। ए2 जेब खर्च है जो किसानों द्वारा फसल उत्पादन में खर्च होता है और एफएल का मतलब पारिवारिक श्रम की आँकी गयी लागत के रूप में है।

लेकिन अगर एमएसपी को स्वामीनाथन के सी2+50 प्रतिशत के फार्मूले (सी2 का मतलब व्यापक लागत) के अनुसार तैयार किया जाता है, तो खरीफ 2023–24 सीजन के लिए ध ाान की कीमत 2,886.50 रूपये प्रति क्विंटल बन जाती है। छत्तीसगढ़ सरकार ने वास्तव में इस विप्पण सीजन में धान किसानों को जो भुगतान किया है, वह सी2+50 प्रतिशत की सिफारिश के बराबर नहीं है, बल्कि वास्तव में सी2+60 प्रतिशत से अधिक बनता है। यह बढ़ी हुई कीमत राज्य चुनावों से पहले एक रस्साकशी का नतीजा है। इस होड़ में आगे रहने की कोशिश में, कांग्रेस ने 3,200 रूपये प्रति क्विंटल पर धान खरीदने का वादा किया था, प्रत्येक किसान से 20 क्विंटल खरीद के साथ, जबकि भाजपा ने 3,100 रूपये प्रति क्विंटल का वादा किया था, लेकिन प्रत्येक एकड़ से खरीदे गए 21 क्विंटल के लिए कीमत सुनिश्चित की थी। यहाँ पिछली कांग्रेस सरकार के प्रति निष्पक्ष होने के लिए हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि छत्तीसगढ़ देश के बाकी भागों, केरल को छोड़कर, के मुकाबले धान की काफी अधिक कीमत चुका रहा था। साल 2022–23 खरीफ सीजन के लिए भूपेश वघेल की सरकार ने किसानों को खरीद मूल्य के अतिरिक्त 9000 रूपये प्रति एकड़ की इनपुट सब्सिडी का भुगतान किया था।

आगामी महीनों में, छत्तीसगढ़ में धान किसानों को दिये जाने वाले ऊँचे रेट अन्य जगहों पर धान किसानों के एकजुट

होने के लिए एक मुद्दा बन जाएंगे। यह देखते हुए कि हर साल 23 फसलों के लिए घोषित एमएसपी पूरे देश में एक समान है, मांग यह होगी कि छत्तीसगढ़ मॉडल के सी2+60 प्रतिशत के आधार पर धान की कीमत में एकरूपता लाई जाए। रोचक यह है कि धान के लिए प्रदान किए जा रहे एमएसपी और सी2+50 लागत, जिसकी मांग किसान यूनियनें कर रही हैं, के बीच अंतर प्रति क्विंटल 683.5 रूपये बनता है। किसान यूनियनें करती हैं कि औसत उपज 25 क्विंटल प्रति एकड़ मानते हुए अगर धान स्वामीनाथन के मूल्य निर्धारण फार्मूले पर खरीदा जाता है तो इसका मतलब होगा किसानों के लिए अतिरिक्त 17,075 रूपये प्रति एकड़, खासकर पंजाब जैसे राज्य में, जहाँ मंडियों में पूरी फसल की आवक होती है। लेकिन छत्तीसगढ़ में धान के रेट (सी2+60) के हिसाब से देखें तो मौजूदा एमएसपी के साथ अंतर जिस पर केंद्र सरकार द्वारा खरीद की गयी है, वह तुलनात्मक रूप से 917 रूपये प्रति क्विंटल है।

छत्तीसगढ़ की कीमतों का मतलब है धान के रेट में तुलनात्मक तौर पर सी2+50 लागत से प्रति क्विंटल 234 रूपये अधिक की बढ़ोतरी। बहलहाल, धान की अधिक कीमत ने किसानों की आशाओं–आकांक्षाओं को जगा दिया है। किसान कह रहे हैं कि अब वे अपने बच्चों के स्वास्थ्य और शिक्षा पर अधिक खर्च करने में सक्षम होगें, बाजार भी उत्साह से भरे हुए हैं।

छत्तीसगढ़ में विभेदकारी मूल्य तंत्र के जरिये किसानों के अर्थशास्त्रियों के लिए राहतकारी है, जो लगातार स्वामीनाथन फार्मूले के मुताबिक एमएसपी बढ़ाने पर बाजार विकृति वाला तर्क देते रहे हैं, और अब छत्तीसगढ़ मॉडल द्वारा कायम किये जा रहे नए बैंचमार्क के साथ तो और भी अधिक। वे नहीं चाहते कि एमएसपी बढ़ाया जाए क्योंकि यह उनके दावे के अनुसार बाजारों को विकृत कर देगा, लेकिन अगर राज्य सरकार को भावांतर कीमत के रूप में मूल्य अंतर का भुगतान करना पड़े तो वे खुश हैं।

वास्तव में, अर्थशास्त्री नहीं चाहते कि कॉर्पोरेट और एग्रीबिजनेस कंपनियाँ कृषि पदार्थों के लिए अधिक कीमत अदा करें।

मेरे विचार में, यह अनुचित है और इसे पॉलिसी के तौर पर लागू नहीं करना चाहिये। यूरोपीय किसानों द्वारा हाल ही व्यक्त क्षोभ, जिसमें बीते कुछ हफ्तों में 24 देशों के किसानों ने अभूतपूर्व विरोध प्रदर्शन किया, से स्पष्ट रूप से सामने आया कि जर्मनी में कृषि वाहनों के लिए डीजल सब्सिडी जैसे इन प्रोत्साहनों को किसी भी स्तर पर राजकोषीय कठिनाइयों या पर्वावरणीय कारकों का हवाला देते हुए वापस लिया जा सकता है। इसलिए एक गारंटीशुदा कीमत की ही जरूरत है।

बाजार से फसल उपज की सही कीमत देनी चाहिए। इसे कृषि उपज के लिए कम भुगतान करके और कृषि आय में नुकसान को बजटीय मदद द्वारा कवर करने के लिए छोड़ देने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए। पहले से ही दुनिया की 54 प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में किसानों के लिए उत्पाद मदद के रूप में प्रति वर्ष 851 बिलियन डॉलर से अधिक खर्च कर रही है ताकि कमी की भरपायी हो सके। यह अर्थव्यवस्थाओं पर बोझ है जबकि कृषि व्यवसाय से जुड़ी कंपनियाँ बड़े आराम से धन अर्जित कर रही है। ऑक्सफैम के अनुसार, दुनिया में बीते वर्षो में 68 नए खाद्य अरबपति बने हैं, जिन्हें फूड बैरन कहा जाता है। यह कहना कि उच्च एमएसपी के चलते मुद्रास्फीति अधिक हो जाएगी और बाजारों को विकृति कर देगी, और कुछ नहीं बल्कि जनता में डर पैदा करने का एक प्रयास है। महामारी वर्ष 2020 से शुरू हुए पिछले तीन वर्षो में, कॉर्पोरेट पर रिकार्ड मुद्रास्फीति के भंवर के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार होने का आरोप लगाया गया है। यहाँ तक कि आईएमएफ भी स्वीकार करता है कि मुद्रास्फीति में कॉर्पोरेट मुनाफे का हिस्सा, जिसे कॉर्पोरेट लालच के रूप में जाना जाता है, 19 प्रतिशत से अधिक है। कुछ लोग इस ग्रीडफ्लेशन यानी लालच स्फीति कहते हैं।

दैनिक ट्रिब्यून, 19 मार्च, 2024

पेंशन की भांति किसान को सुनिश्चित कीमत क्यों नहीं

इसे 'पेंशन सुधार' बताया जा रहा है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा है कि एकीकृत पेंशन योजना (यूपीएस) सरकारी कर्मचारियों के लिए सम्मान और वित्तीय सुरक्षा सुनिश्चित करती है। उन्होंने कहा 'हमें उन सभी सरकारी कर्मचारियों की कड़ी मेहनत पर गर्व है जो राष्ट्रीय प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।' वास्तव में, यूपीएस, जो प्राप्त अंतिम वेतन के 50 प्रतिशत के बराबर पेंशन का आश्वासन देता है–स्वीकारोक्ति है कि पहले वाली और बाजार नीति महंगाई से जुड़ी न्यू पेंशन स्कीम (एनपीएस) सरकारी कर्मचारियों के लिए कारगर नहीं रहें। सरकारी कर्मचारियों के लिए 'परिभाषित लाभ' सुनिश्चित करने के लिए, केंद्रीय मंत्रिमंडल ने पेंशन योजना में बदलाव किया ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सेवानिवृत कर्मचारियों को बाजार नीति अत्याचार (महंगाई) का सामना न करना पड़े।

हालांकि, प्रधानमंत्री ने कई मौको पर देश के किसानों की सराहना की है और अकसर कृषक समुदाय द्वारा प्रदर्शित लचीलेपन की प्रशंसा की है, लेकिन लंबे वक्त से चली आ रही गारंटीशुदा कीमत की मांग पर विचार करने में कोई भी इच्छुक नहीं है। अगर सेवानिवृत कर्मचारियों के लिए बाजार नीति महंगाई से निपटना मुश्किल हो रहा है, तो स्पष्ट कर दें कि बाजार नीति महंगाई किसान के लिए भी उतनी ही बड़ी समस्या है। अगर कर्मचारियों को एक सुनिश्चित पेंशन की जरूरत पड़ती है, तो किसान को भी सुनिश्चित कीमत की जरूरत है। दुनिया में कहीं भी बाजार ने किसानों के लिए उच्च आय सुनिश्चित नहीं की है। प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में या तो सब्सिडी

देकर आय में घाटे की भरपाई की जाती है (चीन कृषि सब्सिडी प्रदान करने में शीर्ष पर उभरा है) या फिर कृषि को अपनी सुविधानुसार बाजार की ताकतों के रहमो–करम पर छोड़ दिया जाता है, मसलन भारत में।

जैसा कि कुछ अध्ययनों से पता चला है, निष्कर्ष केवल यह है कि भारतीय किसान आय पिरामिड के निचले स्तर पर है, बल्कि पिछले लगभग 25 वर्षो से वे हर साल घाटा उठा रहे हैं। किसानों को कभी खत्म न होने वाली गरीबी से बाहर निकालने का एकमात्र कारगर ढ़ग है कृषि कीमतों की गारंटी कानूनी रूप से बाध्यकारी तंत्र बनाकर सुनिश्चित करना। परंतु इसकी परवाह न करते हुए, एनडीए सरकार ने कुछ साल पहले सुप्रीम कोर्ट में पेश एक शपथपत्र में कहा कि न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) गारंटी देने वाला कानून बाजार में 'बिगाड़ ला देगा'। अजीब बात यह है कि जब किसानों की बात आयी है, तो नीति निर्माता 'बाजार में बिगाड' का डर अचानक गायब हो जाता है।

जब मुख्यधारा के अर्थशास्त्री मानते है कि कानूनन एसएसपी से उपभोक्ता कीमतें बढ़ेगी और इस तरह 'बाजार से बिगाड़' होगा, तो वास्तव में, यह कॉर्पोरेट मुनाफे को कम करता है और इसीलिए हो–हल्ला मचता है। अजीब बात यह है कि मुक्त बाजार के हामी इन अर्थशास्त्रियों की यही नस्ल तब चुप रहती है जब अमेरिका में कॉर्पोरेट अपने उत्पाद की 'मूल्य वृद्धि' करते हैं – उपभोक्ताओं को नोच खाने के लिए कीमतों में बेजा बढ़ोतरी करते हैं। वास्तव में यह मूल्य विकृति है। अमेरिका में पहले से ही, कैलिफोर्निया, फ्लोरिडा और न्यूयॉर्क सहित 38 राज्यों ने ऐसे कानून बनाए हैं जो इस चलन को प्रतिबंधित करते हैं। उदाहरणार्थ, न्यूयॉर्क राज्य ने कंपनियों के खिलाफ कदम उठाया जिन्होंने महामारी के दौरान हैंड सैनिटाइजर की कीमतों में 400 प्रतिशत की वृद्धि की थी। और फिर भी, कई बाजार अर्थशास्त्री साफ नजर आने वाली ऐसी बाजार विकृतियों पर अंकुश लगाने के उपायों को सोवियत शैली के मूल्य नियंत्रण की ओर वापसी करार देते हैं। बाजार के पक्ष

में यह पूर्वाग्रह तब पैदा होता है, जब किसानों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान की बारी आए, लेकिन तब नहीं जब कॉर्पोरेट ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए कीमतें बढ़ाते हैं। 'बाजार विकृति पर यह दोगलापन किसानों की जीवनयापन की आय प्रदान करने की राह में अड़चन है।' निःसंदेह, किसानों को देय सुनिश्चित कीमत के अनुसार बाजार अपने आप समायोजित हो जाएंगे। यह केवल खास किस्म की विचारधारा ही है, जो अडंगा लगा रही है।

अमेरिकी उपराष्ट्रपति कमला हैरिस ने कॉर्पोरेट द्वारा अनाप–शनाप मूल्यवृद्धि पर प्रतिबंध लगाने का आह्वान किया है, जो कोविड महामारी के बाद खाद्य और किराना वस्तुओं की कीमतों में आई 53 प्रतिशत वृद्धि के लिए अकेले जिम्मेदार है। रिपब्लिकनों ने उनके इस रूख को 'कम्युनिस्ट' ठहराया है। दक्षिणपंथी चाहे जो भी कहें, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है, जैसा कि कुछ अर्थशास्त्री भी स्वीकारते हैं कि बेजा मूल्यवृद्धि पर अंकुश अच्छी अर्थव्यवस्था के साथ–साथ अच्छी राजनीति भी है। हैरिस ने उन कंपनियों के खिलाफ कार्रवाई का वादा किया है जो खाद्य कीमतों को कृत्रिम रूप में ऊँचा रख रही है।

वापस कर्मचारियों की पेंशन पर लौटते हुए, यह देखना दिलचस्प है कि व्यय विभाग इन निर्णय को सही ठहराने के लिए हरसंभव प्रयास कर रहा है, इसे 'राजकोषीय रूप से विवेकपूर्ण' करार देते हुए दावा किया जा रहा है कि 'यह नागरिकों की भावी पीड़ियों को वित्तीय कठिनाइयों से बचाएगा'। निश्चित रूप से, कर्मचारियों के लिए सुनिश्चित पेंशन के खिलाफ कोई नहीं है। लेकिन यदि कर्मचारियों को सामाजिक सुरक्षा का आश्वासन दिया जा सकता है, तो कोई वजह नहीं कि किसानों के लिए आर्थिक सुरक्षा का भरोसा न दिया जा सके। वे राष्ट्रीय प्रगति में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं और उनकी अथक मेहनत की बदौलत ही देश में खाद्य सुरक्षा बनी हुई है।

मध्यप्रदेश के मंदसौर जिले के किसान कमलेश पाटीदार ने जब 10 एकड़ में खड़ी अपनी सोयाबीन की फसल को खुद

ही रौंद दिया, तो उन्हें यह अहसास नहीं था कि इससे एक 'चेन रिएक्शन' शुरू हो जाएगा। घटना का वीडियों वायरल होने के कुछ ही दिनों बाद, कई अन्य दुखी किसानों द्वारा फसल उखाड़ने की खबरें आने लगी। सोयाबीन की कीमतों में गिरावट – और वह भी कटाई के मौसम से डेढ़ महीने पहले – अर्थशास्त्रियों की एक और धारणा को नकारती है जो यह कहती है कि किसानों को कटाई तब तक रोक कर रखनी चाहिए जब तक कि इन्हें मंडी में फसल का भाव चढ़ा हुआ नजर न आने लगे। लेकिन यह जुगत भी कारगर नहीं रही।

सोयाबीन की मौजूदा कीमतें 12 साल के पहले स्तर पर आ गई है, लेकिन कृषि पर निर्भर आजीविका के विनाश ने लाखों सोयाबीन किसानों को गुस्सा से भर दिया है। कीमतें, जो एमएसपी से बहुत कम है, उत्पादन लागत तक निकालने के लिए भी पर्याप्त नहीं है। हैरानी की बात है कि हमारे पास किसानों के लिए एक सुनिश्चित मूल्य नीति कब होगी जो न केवल किसानों की भावी बल्कि वर्तमान पीढ़ी के लिए भी वित्तीय कठिनाइयों को रोकेगी। इसके तुरंत बाद, टमाटर की कीमतों में 60 प्रतिशत की गिरावट के साथ 25 किलोग्राम वाले क्रेट का भाव 300 रूपये के निचले स्तर पर आने की खबरें आई। और फिर बासमती की कीमतों में 28 प्रतिशत की गिरावट के साथ 2,500 रूपये प्रति क्विंटल आने की खबरें भी आई। यह केवल इसी साल होने वाली कोई अनोखी बात नहीं है, बल्कि यह चलन एक दर्दनाक सालाना प्रवृति बन चुका है। जिसको लेकर देश में चिंता नही है। किसान चाहे वह हो जिसके पास विपणन योग्य अतिरिक्त उत्पाद है या फिर हाशिए पर आता कृषक, जिसकों प्रत्यक्ष आर्थिक मदद दी जाती है, उन्हें कानूनन गारंटीकृत एमएसपी प्रदान करना, वह बड़ा सुधार है जिसका इंतजार कृषि को शिद्दत से है।

दैनिक ट्रिब्यून, 30 अगस्त, 2024

किसानों को भी मिले कॉर्पोरेट जैसी उदार मदद

विदेश यात्रा के दौरान क्रेडिट कार्ड के जरिये भुगतान पर 20 प्रतिशत कर लगाने पर माहौल गर्माने के बाद सोशल मीडिया पर रोचक बहस छिड़ गई। एक जाने–माने और बड़े कारोबारी ने एक पोस्ट सांझा किया, जिसकी इबारत थी : 'मैं एक कर दाता हूँ, मेरा कर राष्ट्र के लिए है, न कि मुफ्त की रेवड़िया लुटाने को।' इस ट्वीट ने खासी प्रतिक्रिया अर्जित की।

सरकार ने अपने रूख में लचीलापन दिखाते हुए संशोधन किया कि 20 प्रतिशत कर तभी लगेगा जब विदेश में क्रेडिट कार्ड आधारित भुगतान की रकम 7 लाख से ज्यादा बने। इस समय भी ट्वीटर पर रोचक एवं अर्थपूर्ण प्रतिक्रियाएं आईं। एक ट्वीटर उपभोक्ता ने कहा : 'जब सिपाही सीमा पर खड़े हैं, तो अमीर आदमी क्यों नहीं क्रेडिट कार्ड से किए भुगतान पर 20–प्रतिशत टैक्स भर सकता।' यह ऐसा जुमला है जो नोटबंदी समर्थकों द्वारा गढ़े गए 'तर्को' से प्रेरित लगता है।

अमीर वर्ग ने सावधानीपूर्वक और निरंतर प्रचार से आभास गढ़ा है मानो देश का विकास केवल उनके यानी कॉर्पोरेट्स द्वारा चुकाए करों पर निर्भर है। यह बात सही है कि जो लोग परोक्ष कर भरते हैं उनकी चिंता इस बात पर जायज है कि उनके कराधान का पैसा कहाँ जा रहा है। लेकिन यह आभास देना कि सिर्फ अमीर ही कर भरता है, एकमदम गलत हैं जीएसटी के आने के बाद से, एक गरीब आदमी अगर हवाई चप्पल जैसी वस्तु खरीदता है तो भी टैक्स भरता है। आम नागरिक अन्य आवश्यक वस्तुओं पर भी कर चुकाता है, जिससे थैलीबंद दूध एवं पनीर जैसे दुग्ध उत्पाद भी शामिल हैं।

फैलाई गई कहानी कि केवल कॉर्पोरेट्स ही कर भरते हैं। इसको बदलना होगा। जैसा कि ऑक्सफैम की एक रिपोर्ट बताती

है कि देश में निचले तबके वाली 50 प्रतिशत जनसंख्या कुल जीएसटी उगाही में दो–तिहाई है, जबकि चोटी का 10 प्रतिशत वर्ग केवल 3–4 फीसदी। यहाँ, चोटी के 10 फीसदी अमीरों में वे हैं, जिनकी कमाई 25000 रूपये महीना या इससे अधिक है।

बात पुनः ट्वीटर पर चली बहस की करें तो अपने उत्तर में मैंने ट्वीट किया : 'हाँ, मेरे कर का पैसा कॉर्पोरेट्स की मुफ्त की खैरात देने में इस्तेमाल के लिए नहीं है।' इस ट्वीट पर काफी संख्या में लोगों ने देखा, अभी तक यह संख्या 30,1000 पार हो चुकी है। यह साफ दर्शाता है कि समाज के काफी बड़े तबके को अहसास है कि कैसे कॉर्पोरेट को मुफ्त की खैरात मिल रही है और वह भी तथाकथित तरक्की की आड़ में। यहाँ मुख्य बात यह है कि हम वाकई नहीं चाहते कि हमारा धन कॉर्पोरेट्स को मुफ्त की रेवड़ियों की तरह बंटे।

पहले यह जानने की कोशिश करें कि लोगबाग कॉर्पोरेट्स को मुफ्त की खैरात बाँटने पर क्यों खफा हैं। भारत में, अन्य मुल्कों की भांति, कॉर्पोरेट्स को फायदा न केवल लंबे समय की कर–वसूली में माफी देकर बल्कि घटी दरों का कॉर्पोरेट टैक्स और आर्थिक प्रोत्साहन पैकेज देकर भी पहुँचाया जाता है और उनकी मदद अन्य तरीकों से, जैसे कि सस्ती दर पर जमीन, सस्ती बिजली और सब्सिडी वाला बैंक ऋण इत्यादि देकर भी की जाती है। जहाँ उद्योग जगत सोचता है कि यह प्रोत्साहन तरक्की के लिए है, जबकि कुछ समय पहले हुए एक शिखर सम्मेलन में प्रधानमंत्री ने अपने संबोधन में माना था कि जिसे उद्योगों को बढ़ावा देने वाला प्रोत्साहन कहा जाता है, वह भी एक सब्सिडी है।

राष्ट्र के खजाने को खाली करने के अलावा मुफ्तखोर देश के प्राकृतिक स्त्रोतों का भी दोहन करते हैं। इसने वह आय असमानता भी पैदा कर डाली है, जो हर साल बढ़ती जा रही हैं संयुक्त राष्ट्र के अध्ययन के मुताबिक, हर उद्योग जगत को 7.3 ट्रिलियन डॉलर मूल्य की प्राकृतिक संपदा के

दोहन की छूट दी जाती हैं। इतने विशाल स्तर की सब्सिडी हटा दी जाए तो कॉर्पोरेट्स का मुनाफा धराशायी हो जाएगा। इसलिए अमीर और अमीर हो रहे हैं और गरीब और गरीब। अनुमान बताते हैं कि दुनियाभर में चोटी के अमीर, जो कि सकल जनसंख्या का 0.01 प्रतिशत हैं, उनके हाथ में इतनी धन–संपदा का नियंत्रण है जो निचले पायदान पर बैठी 90 फीसदी जनसंख्या के बराबर है।

ऐसे में सवाल उठता है कि क्यों केवल अमीरों को ही बैंकों से ऋण माफी के अलावा घटी दर पर कर भरने का लाभ मिलता है? उदाहरणार्थ, भारत में, कोविड महामारी से पहले, 2019 में कॉर्पोरेट जगत को हर साल 1.45 लाख करोड़ रूपये की कर–छूट दिये जाने की घोषणा की गई है। इतनी विशाल कर–छूट ऐसे समय पर दी गई जब अधिकांश अर्थशास्त्री राष्ट्रीय धन को ग्रामीण क्षेत्र में वस्तु–माँग बढ़ाने के लिए उपयोग करने की सलाह दे रहे थे। कॉर्पोरेट को मिली यह सौगात 1.8 लाख करोड़ रूपये के उस आर्थिक प्रोत्साहन पैकेज के अलावा है, जो वर्ष 2009 में वैश्विक महामंदी के बाद भारत सरकार ने उद्योग जगत को दिया था। इसका मतलब है कि इन सालों में 20 लाख करोड़ रूपये पहले ही अमीरों को जा चुकें हैं। अगर कहीं यह पैसा केवल कृषि क्षेत्र में निवेश कर दिया जाता तो खेती संबंधी संत्रास इतिहास की बात हो जाता।

दूसरी ओर, जब भी सरकार प्रधानमंत्री किसान निधि योजना के तहत किसानों को प्रति तिमाही 2000 रूपये जारी करती है तो इसका प्रचार बड़े जोर–शोर से किया जाता है, इसके बरक्स कॉर्पोरेट जगत को हर साल 1.45 लाख रूपये की कर–छूट का जिक्र तक नहीं होता।

वित्तीय वर्ष 2021 की समाप्ति तक भारतीय बैंकों ने कॉर्पोरेट जगत के अनचुके ऋण की 11.68 लाख करोड़ रूपये की विशाल राशि बट्टे खाते में डाल दी है। रोचक कि, मार्च 2022 तक, इरादतन ऋण अदायगी न करने वालों में चोटी के 50 कर्जदारों की तरफ बैंकों का 92,570 करोड़

रूपये बकाया था। ये वह लोग हैं जो कर्ज वापस करने की स्थिति में हैं, लेकिन करना नहीं चाहते।

इसी प्रकार, सरकार ने उत्पादन से जुड़ी प्रोत्साहन योजना के अंतर्गत 14 क्षेत्रों में 1.97 लाख करोड़ रूपये की सहायता राशि देने की घोषणा की है। वास्तव में, यह सब्सिडी पहले संत्रास भुगत रही कृषि को दिए जाने की जरूरत थी।

विडंबना है कि व्यापार जगत के कुछ अग्रणी लोग मानते हैं कि बैंकों द्वारा माफ किया धन उनके मुनाफे से है, इसलिए इसका संबंध कराधान से मिलने वाले पैसे से नहीं है। लेकिन शायद वे यह मानना नहीं चाहते कि बैंकों द्वारा बट्टे खाते में डाले गए पैसे की वसूली सरकार अन्य ढंग से करती है, जिसका मतलब कि यह ऋण–माफी दरअसल आम कर–दाता के पैसे से होती है। सवाल यह भी कि क्यों भारत में केवल कॉर्पोरेट्स को ही ऋण माफी की सुविधा है जबकि छोटा–सा कर्ज न चुका सकने की एवज में किसी किसान को जेल तक जाना पड़ जाता है, क्यों इरादतन ऋण–चोरों से बड़ी नरमी से बर्ताव जबकि कर्ज देने में चूके किसान को जेल की सजा?

यह देखना दर्दनाक है कि कैसे किसान में वाजिब दाम न लगने के कारण अपना आलू, प्याज, टमाटर, गोभी आदि उत्पाद सड़कों पर फेंकने को मजबूर हैं। खेती में संत्रास पिछले काफी वक्त से कायम है। खेत–मजूरी भी काफी सालों से एक जगह पर अटकी है। सबसे बड़ा रोजगार प्रदाता यह वह अनियोजित क्षेत्र है जिसे फौरी मदद की जरूरत है। यदि कृषि फले–फूलेगी तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अनेक पहलुओं पर इसका सकारात्मक असर होगा लिहाजा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था भी ऊपर चढ़ेगी। यह वह क्षेत्र है मेरे द्वारा चुकाए टैक्स का पैसा जाना चाहिए।

सब्सिडी कवच लैस अमेरिकी उत्पादों से व्यापार युद्ध

जब हाल ही में मैंने पढ़ा कि अमेरिकी वाणिज्य सचिव हॉवर्ड लुटनिक हैड ने विशेष तौर पर भारत से कहा है कि वह अपना बाजार अत्यधिक सब्सिडी प्राप्त अमेरिकी कृषि उत्पादों के लिए खोले, तो इस पर, मुझे विश्व बैंक के पूर्व मुख्य अर्थशास्त्री निकोलस स्टर्न के बोल याद आ गए, जो उन्होंने उस समय देश में अपनी यात्रा के दौरान कहे थे, संक्षेप में कुछ यह था 'मैं सहमत हूँ कि अमेरिकी किसानों को जिस मात्रा की सब्सिडी मिलती है, वह एक प्रकार से पाप है, लेकिन यदि भारत अपना बाजार नहीं खोलता, तो ये आपदा का नुस्खा होगा।'

एन्न वेनमैन (जिनका कार्यकाल जार्ज बुश जूनियर के समय 2001–2005 तक था) से शुरू होकर कुछ इसी किस्म का दोगलापन अमेरिका के एक के बाद एक आए कृषि मंत्री समय–समय पर दिखाते रहे हैं। मुझे याद आ रहा है कि किस प्रकार उन्होंने वाशिंगटन डीसी में अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्थान (आईएफपीआरआई) में अपने संबोधन में बेशर्मी से विश्व बैंक के मुख्य अर्थशास्त्री की उस मूर्खतापूर्ण दलील (जो कि हास्यास्पद भी थी) का समर्थन किया, जिसमें भारत कृषि मंडी को जबरदस्ती खोलने की बात कहीं गई थी। दरअसल, एक समय ऐसा भी आया जब अमेरिका के कम–से–कम 14 कृषि फसल निर्यात समूहों ने अमेरिकी व्यापार प्रतिनिधि (यूएसटीआर) को पत्र लिखकर भारत में न्यूनतम समर्थन मूल्य (एसएसपी) के नाम पर फसल–विशेष को दिये जाने वाले मूल्य संरक्षण की ऊपरी सीमा तय करवाने की मांग की ताकि अमेरिकी निर्यात की भारत में राह खुल सके।

इसलिए अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप द्वारा शुरू किये गए अवांछित व्यापार युद्ध से मैं हैरान नहीं हूँ। ये एकदम

जाहिर है कि विश्व व्यापार संगठन (डब्लूटीओ) में लंबे समय तक चली बहुपक्षीय वार्ताओं से जो कुछ अमेरिका हासिल नहीं कर पाया उसकी प्राप्ति के वास्ते अब ट्रंप की अरबपति मित्र मंडली विकासशील देशों को घुटनों पर लाने की गलत सलाह दे रही है। लेकिन कई प्रमुख अर्थव्यवस्थाएं अब अवज्ञा में खड़ी होने लगी हैं, मैं नहीं चाहूँगा कि भारत ऐसा कुछ दिखाए कि यदि उसे कुछ झुकने के लिए कहा जाए, तो ऐसा आभास दे कि वह रेंगने तक को राजी है।

यहाँ मैं एक और कहानी सुनाना चाहूँगा। कुछ साल पहले, अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने टिप्पणी की थी कि चीन के 'खराब मानवाधिकार रिकार्ड के कारण अमेरिका उसके साथ व्यापार नहीं करेगा।' अगले दिन मैंने संयोग से बीबीसी टीवी चैनल चालू किया, जहाँ एक पत्रकार तत्कालीन चीनी राष्ट्रपति से पूछ रहा था : 'अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा व्यापार रोकने वाली धमकी पर आपकी क्या प्रतिक्रिया हैं।' उनका जबाब भी उतना ही रूखा था : 'अमेरिका के साथ व्यापार? जब हमने 4,000 साल से ज्यादा अमेरिका के साथ व्यापार किया ही नहीं, तो इससे अब क्या फर्क पड़ने वाला हैं?' इस बयान के अगले दिन ही अमेरिकी व्यापार और उद्योग जगत अपने राष्ट्रपति द्वारा चीन के साथ व्यापार बंद करने के आह्वान के विरूद्ध लामबंद हो गया। आखिरकार बिल क्लिंटन को घरेलू उद्योग लॉबी के सामने झुकना पड़ा और उन्होंने फिर कभी इस मुद्दे को नहीं छेड़ा। नये टैरिफ युद्ध वाले मुद्दे पर फिर से लौटते हैं, भारत में अमेरिकी कृषि उत्पादों के प्रवेश पर नियंत्रण व्यवस्था होने की वजह से ट्रंप हमारी आलोचना वैश्विक 'टैरिफ किंग' का ठप्पा लगाकर कर सकते हैं (अमेरिका के 5 प्रतिशत आयात शुल्क के मुकाबले भारत का औसतन आयात शुल्क लगभग 39 प्रतिशत है), लेकिन वास्तविकता यह है जो शुल्क भारत ने लगा रखा है, वह विश्व व्यपार संगठन के उस प्रावधान के अनुरूप है जिसमें टैरिफ दर किसी देश के विकास की श्रेणी और व्यापार संहिता में वर्णित 'विशेष एवं विभेदक व्यापार' नामक आकलन

के आधार पर है, सनद रहें कि भारत किसी भी अवस्था में विश्व व्यापार संगठन द्वारा निर्धारित प्रावधानों का उल्लंघन नहीं कर रहा। भारत के अपेक्षाकृत उच्च शुल्क उक्त संगठन के नियमन में अंतर्निहित व्यापारिक सिद्धांतों पर आधारित है, न कि किसी की व्यक्तिगत सनक अथवा कल्पना से चालित।

दूसरी ओर, वास्तव में समस्या अमेरिका द्वारा कृषि के लिए दी जाने वाली भारी सब्सिडी है। इतनी ज्यादा कि 21 जुलाई 2006 की फाइनेंशियल टाइम्स में लिखते हुए, यूरोपीय संघ के तत्कालीन व्यापार आयुक्त पीटर मैंडेलसन ने स्पष्ट रूप से कहा कि विकासशील देशों का कहना है कि वे अमेरिका के कृषि उत्पाद अधिक आयात करने को तो राजी हैं, लेकिन अमेरिकी कृषि सब्सिडी नहीं। इस बाबत उन्होंने भारत के तत्कालीन वाणिज्य मंत्री कमलनाथ को उद्धत किया था : 'हमें अमेरिकी किसानों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में कोई एतराज नहीं, लेकिन अमेरिकी खजाने का मुकाबला हम नहीं कर पायेगें'। सालों साल अमेरिका ने अपनी कृषि के इर्द–गिर्द बनाए गए भारी सब्सिडी रूपी सुरक्षा दुर्ग को और मजबूत ही किया है। अमेरिकी कृषि विभाग की आर्थिक अनुसंधान सेवा के अनुसार, किसानों और पशुपालकों को प्रत्यक्ष सरकारी कृषि कार्यक्रम के तहत दी जाने वाली सीधी वित्तीय सहायता 2025 में 42.4 बिलियन डॉलर तक पहुँचने की उम्मीद है, जबकि 2024 के लिए पूर्वानुमान 9.3 बिलियन डॉलर का था। प्रति किसान गणना के आधार पर, अमेरिका अपने हरेक किसान की 26.8 लाख रूपये सालाना जितनी वित्तीय मदद करता है।

उदाहरणार्थ, विशेष तौर पर कपास का मुद्दा, जो कि विश्व व्यापार संगठन वार्ताओं में विवाद का एक मुद्दा बना हुआ है। 2021 में अमेरिका ने कपास बिजाईं के तहत औसत क्षेत्र 624.7 हेक्टेयर था, और इसको उगाने वाले किसान महज 8,103 थे जिन्हें अमेरिका ने अत्यंत भारी–भरकम सब्सिडी दी (जबकि भारत में कपास की खेती में 98.01 लाख किसान लगे थे)। नई दिल्ली स्थित विश्व व्यापार संगठन के अध्ययन केंद्र द्वारा की

गई गणना बताती है कि 2021 में अमेरिकी कपास कृषक को 117,494 डॉलर सालाना वित्तीय सहायता मिली, वहीं इसकी तुलना में, भारत में कपास उगाने वाले किसान को महज 27 डॉलर की मदद मिल पाई।

आइए इस पर नजर डाले कि एग्रीगेट मेजर ऑफ सपोर्ट (एएमएस) फार्मूला के साथ अमेरिका और यूरोपियन संघ फसल विशेष की मदद कैसे करते हैं। व्यापार समझौता वार्ताओं के दौरान, अमीर एवं विकसित देश बहुत चतुराई के साथ यह सुनिश्चित करने में कामयाब रहे कि विकासशील देशों के लिए रखी गई 10 प्रतिशत गैर–न्यूनतम सीमा के बनिस्बत अमीर देश अपने लिए उच्च व्यवसायिक मूल्य वाली मुट्ठी भर फसलों के लिए ऊपरी सीमा (5 प्रतिशत अधिकतम) मद वितरित करने में सफल रहे। उदाहरण के लिए कपास का मामला लें। जहाँ यूरोपीय संघ ने 2006 में कपास के लिए 139 प्रतिशत सब्सिडी सहायता प्रदान की थी, वही इससे 5 साल पहले यानी 2001 में, अमेरिका ने विकसित देशों के लिए रखी सीमा के अलावा अतिरिक्त 74 प्रतिशत सहायता अपने कपास किसानों को दी थी।

कृषि आयातों पर कम टैरिफ केवल एक दिखावा भर है कि अमेरिकी कृषि एक खुला बाजार है। लेकिन बारीकी से देखने से पता चलता है कि अमेरिका ने आयात पर नकेल कसने के लिए 9 हजार से अधिक गैर टैरिफ बाधाएं (भारत द्वारा 600 के मुकाबले) खड़ी कर रखी है। जब ट्रंप कहते हैं कि अमेरिका भी दूसरे देश की शुल्क दर के बराबर टैरिफ लगाने जा रहा है, तो भारत के पास भी अपनी खेती की रक्षा के लिए गैर टैरिफ नाकेबंदी जैसे उपाय करने के वास्ते पर्याप्त गुंजाइश उपलब्ध है।

भारत को अपना घर व्यवस्थित करने के लिए कहने की बजाय अमेरिका से अपना कृषि बाजार खोलने के लिए कहने की जरूरत है। यह तभी हो सकता है जब अमेरिका से कहा जाए कि पहले वह अपनी कृषि के इर्द–गिर्द बनाया अत्यधिक सब्सिडी वाला दुर्ग ढहाए।

दैनिक ट्रिब्यून, 27 मार्च, 2025

प्राकृतिक पूंजी की लूट से उपजा सभ्यता का संकट

अप्रैल के आखिरी सप्ताह में देहरादून में भारतीय वन सेवा (आईएफएस) अधिकारी प्रशिक्षुओं के 2022 बैच के दीक्षांत समारोह में राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू के भाषण संपादित अंश पढ़े, तो मुझे आलोक शुक्ला की याद आ गई। जो एक अथक योद्धा और छत्तीसगढ़ बचाओं आंदोलन के संयोजक थे। आलोक शुक्ला ने एक सफल सामुदायिक अभियान का नेतृत्व किया था, जिसके तहत हसदेव अरण्य के प्राचीन जंगलों में 4,45,000 एकड़ जैव विविधता से समृद्ध जंगलों को बचाया।

दीक्षांत समारोह में राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने कहा था, 'जब जंगलों की अहमियत समझने की बात आती है तो मनुष्य जानबूझकर खुद को भूलने के रोगियों में शामिल कर लेता है–यह जंगल की आत्मा है जो पृथ्वी को चलाती है।' और उसी भावना से जिस भाव से उन्होंने उस दिन उत्तीर्ण होने वाले सभी अधिकारियों को बधाई दी, मुझे लगता है कि यह स्वीकार करना उचित होगा कि आलोक शुक्ला भी 'समाज में प्रगति के प्रतीक है।'

अब इससे पहले कि आप मुझसे पूछें कि आलोक शुक्ला कौन हैं और उन्होंने जंगलों को बचाने के लिए क्या अभूतपूर्व योगदान दिया है, और वह भी ऐसे समय में जब उच्च आर्थिक विकास हासिल करने के लिए जंगलों की लूट को पूर्व–अपेक्षित क्षति माना जाता है, उन्हें 2024 के गोल्डमैन पर्यावरण पुरस्कार से नवाजा गया है, जिसे 'ग्रीन नोबेल' भी कहा जाता है। वह इस वर्ष सम्मान पाने वाले छह महाद्वीपों के सात बहादुरों में से एक हैं। निडर और साहसी, सबसे शक्तिशाली आर्थिक ताकतों से लोहा लेने की उनकी अदम्य भावना ने छत्तीसगढ़ के आदिवासी क्षेत्रों में लगभग 4.5 लाख एकड़ के अमूल्य आदिम जंगलों में लाखों पेड़ों को बचाया है। हसदेव समुदाय ने न केवल उस विशाल जैविक

संपदा की रक्षा के लिए सभी बाधाओं के खिलाफ संघर्ष किया है, बल्कि यह सामुदायिक प्रयास मानवता के हित में प्राकृतिक संसाधनों से जुड़े पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण में भी मदद करेगा।

यदि मैं पारिस्थितिकी तंत्र और जैव विविधता के अर्थशास्त्र (टीईईबी) दृष्टिकोण को लागू करने वाले वास्तविक लेखांकन मानदंडों का उपयोग करके आर्थिक मूल्य का पता लगाने का प्रयास करूं, तो इसकी कीमत कई ट्रिलियन भारतीय रूपये होगी।

जब मैंने इससे पहले कहा कि आलोक शुक्ला बेहद शक्तिशाली आर्थिक ताकतों के विरूद्ध सक्रिय रहे (और अभी भी हैं) तो यह संदर्भ हसदेव अरण्य के जंगलों में अलॉट की गयी 21 नियोजित कोयला खदानों के संबंध में था। आदिवासी समुदाय की ओर से एक लंबी और सतत मुहिम के बाद, उन्होंने साल 2012 में जो हसदेव अरण्य बचाओं संघर्ष समिति गठित की, उसने प्रतिरोध को इस तरह से संगठित किया कि वह प्रभावी बन गयी, और आखिरकार सर्वाधिक शक्तिशाली कॉर्पोरेशन में से कुछ को मिले 21 नियोजन कोयला खानों के परमिट रद्द करने के लिए मजबूर करने में सफल रही। इस प्रक्रिया में, स्थानीय समुदाय द्वारा सतत् संघर्ष, जिसमें अनगिनत धरने, गढ़वाल के पहाड़ों में विख्यात चिपको आंदोलन की तरह पेड़ों को लिपटना और राज्य की राजधानी रायपुर की ओर 166 किलोमीटर कूच, शामिल है। यदि किसी को इस संघर्ष, जारी रहे आंदोलनों और समुदायों के उत्पीड़न की कार्रवाई का एक दस्तावेज तैयार करना हो तो यह नेटफ्लिक्स, प्राइम और अन्य ओटीटी प्लेटफार्मों के लिए एक आकर्षक डॉक्युमेंटरी सीरीज होगी। यह निश्चित तौर पर हाथी की फुसफुसाहट नहीं थी बल्कि ये अति आधुनिक आरा मशीनें थी जिनका आदिवासियों को सामना करना था।

गोल्डमैन पर्यावणीय पुरस्कार भी ऐसे समय पर आया है जब चिपको आंदोलन अपनी 50वीं वर्षगांठ मना रहा है। डाउन टू अर्थ पत्रिका के 16–30 अप्रैल, 2024 अंक में वर्णित है कि चिपको आंदोलन ने देशव्यापी पर्यावरण चिंताओं को प्रेरित किया था और नीति निर्माण पर प्रभाव डाला था। उस परिवर्तन का

नेतृत्व करने वाले चंडी प्रसाद भट्ट याद करते हैं, जब ठेकेदार और मजदूर साल 1973 में मार्च माह की एक सुबह रैणी गाँव के जंगल को काटने के लिए पहुँचे, तो गाँव में कोई आदमी नहीं था। चंडी प्रसाद आगे बताते हैं कि 'गौरा देवी, जो उस समय महिला मंडल की मुखिया थीं, अन्य महिलाओं को जंगलों में ले गयी और पेड़ों से लिपट गयी।' बाकी आगे सब इतिहास है।

चिपको आंदोलन को याद करना इसलिए महत्वपूर्ण है कि हसदेव जंगलों में भी महिलाओं को पेड़ो से लिपटना पड़ा था। लेकिन गढ़वाल क्षेत्र में लकड़ी काटने आने वाले व्यवसायियों के उलट यहाँ छत्तीसगढ़ में राज्य सरकार से मदद और शह प्राप्त शक्तिशाली कंपनियाँ थीं। इसलिए शायद छत्तीसगढ़ के पेड़ो को बचाने के लिए कुछ ज्यादा करने की जरूरत थी, और यही बात थी कि वहाँ सामुदायिक प्रतिरोध जरूरी हो गया था।

पर्यावरणीय संरक्षण के साथ आर्थिक विकास का संतुलन बनाने की बात अकसर की जाती है लेकिन जब मानवता के लिए जंगलों को बचाने का मामला होता है, खासकर मौसम में उबाल के वक्त, हमेशा अर्थशास्त्र को ही प्राथमिकता दी जाती है। जबकि यह ज्ञात है कि दुनिया के कुछ सबसे बड़े उद्योग हर साल अनुमानित 7.3 ट्रिलियन डॉलर मूल्य की प्राकृतिक संसाधनों की लूट की इजाजत दी जा रही है, उसमें कहीं जरा भी पछतावा नजर नहीं आता। जंगलों के कटान की वजह से वातावरण में वैश्विक जलीय चक्र सूख रहे हैं। जैसे कि येल विश्वविद्यालय की स्टडी बताती है, जंगल स्थानीय वातावरण को ठंडा करके स्थानीय जलवायु को नियंत्रण में रखते हैं।

यहीं आलोक शुक्ला ने देश का औपनिवेशिक दृष्टिकोण से आगे की बात सोचने की राह दिखाई है। हमें अपने ग्रह को विनाश से बचाने के लिए अलग प्रकार के आर्थिक सिद्धातों की जरूरत है। हम पुराने पड़ चुके ग्रोथ मॉडल के साथ और ज्यादा आगे नहीं बढ़ सकते हैं।

दैनिक ट्रिब्यून, 4 जून, 2024

खाद्य सुरक्षा के लिए जरूरी है अरावली का वजूद

वर्ष 2021 की हॉलीवुड व्यंग्य फिल्म 'डोंट लुक अप' में, दो अमेरिकी खगोलशास्त्री दुनिया को एक धुमकेतु के बारे में चेतावनी देते हैं, जो पृथ्वी की ओर तेजी से बढ़ रहा है। हालांकि, अमेरिकी राष्ट्रपति एक अरबपति के झांसे में आ जाते हैं, जो यह दावा करता है कि उस आकाशीय पिंड में खरबो डॉलर के दुर्लभ तत्व हैं। आखिरकार, धूमकेतु पृथ्वी से टकराता है, जिससे एक वैश्विक आपदा बनती है।

काश! फिल्म के मुख्य किरदारों ने प्राकृतिक संसाधनों की लूट के भयानक परिणामों के बारे में संज्ञान लिया होता, जैसा कि उत्तर भारत के हरे फेफड़े पुकारी जाने वाली और पर्यावरण सुरक्षा के लिए अति संवेदनशील किंतु क्षतिग्रस्त की जा चुकी अरावली पर्वत श्रृंखला की प्रस्तावित 100 मीटर की परिभाषा से साफ था तो फिल्म का शीर्षक 'डोंट लु अप, लुक डाउन' होता। यह वही है, जिसकी चेतावनी महात्मा गांधी ने यह कहकर दी थी, दुनिया में हर किसी की जरूरत के लिए काफी है, लेकिन हर किसी के लालच के लिए नहीं।

कई साल पहले, मैं हिमाचल प्रदेश के बिलासपुर जिले में गोबिंद सागर जलाशय के ऊपर हिमालय की नाजुक पहाड़ियों में चूना पत्थर की खुदाई पर रिपोर्टिंग करने गया था। एक सीमेंट कंपनी धीरे–धीरे परत–दर–परत, चूना पत्थर वाली पहाड़ी को खुरच रही थी। जब मैंने कंपनी के महाप्रबंधक से पूछा कि क्या उन्हें अहसास है कि पहाड़ी को समतल करने से गंभीर पारिस्थितिक नुकसान होगा, तो उनके जवाब में आमतौर पर हावी मानसिकता झलक रही थी, 'जब पहाड़ी ही नहीं रहेगी तो आप किस पारिस्थितिक नुकसान की बात कर रहे हैं?'

हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि सामाजिक प्रभाव भी होते हैं, जिनके लिए कोई माप–सूत्र मौजूद नहीं है। ऐसे में, अगर नीति निर्माताओं को गलती करनी भी पड़े, तो उन्हें लोगों और पर्यावरण के हित में गलती करनी चाहिए। इसी तरह, जब हिमालय के ग्लेशियर पिघलने लगे, तब एक ऐसा कथानक गढ़ने की कोशिश की गई जो उन दावों को चुनौती दे रहा था, जिससे इस घटना क्रम को जलवायु आपदा बताया गया था। भगवान का शुक्र है कि अब दुनिया पिघलते ग्लेशियरों के विनाशकारी परिणामों के प्रति जाग गई है। ग्लोबल बॉइलिंग स्टेज में प्रवेश कर चुकी है। इसका मतलब है पहाड़ियों और जंगलों का अंधाधुंध दोहन, जो दुनिया को सिर्फ जलवायु आपदा की ओर धकेलेगा।

चार राज्यों – गुजरात, राजस्थान, हरियाणा और दिल्ली के 37 जिलों में 1.44 लाख वर्ग किमी में फैली अरवाली पहाड़ियों में सीसा, जस्ता, चांदी, तांबा और बेशक, संगमरमर जैसे मुख्य खनिजों का भरपूर भंडार है। इसके विकास के जिए जरूरी है। अगर ऐसा है, तो मुझे नहीं पता कि इतने बड़े पैमाने पर 'सेव अरावली' विरोध प्रर्दशन क्यों हो रहे हैं। क्या लोग, खनिज संपदा की आर्थिक कीमत नहीं समझते, जिसे किसी भी कीमत पर निकालना जरूरी है?

एक अरब साल से भी ज्यादा पुरानी अरावली पहाड़ियों ने उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र के रेगिस्तान बनने के विरूद्ध एक हरी दीवार का काम किया है। ये पहाड़ियाँ समृद्ध जैव विविधता का भंडार भी है; ये जमीन के नीचे के जलभंडारों की भरपाई करने में अहम भूमिका निभाती है और इन्होंने दिल्ली, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में रेगिस्तान की आगे बढ़ने की चाल को रोका है। लेकिन अरावली पट्टी में इंसान दखल और विकास प्रक्रिया के कारण वन्यजीवों के आवासों और स्थानीय आजीविका को पहले ही बहुत नुकसान हो चुका है। जैसे–जैसे रेगिस्तान फैल रहा है, देश की कड़ी मेहनत से हासिल की गई खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ रही है।

फरवरी, 2025 में संसद को बताया गया कि भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा तैयार है। एक बार अरावली का

स्वरूप नई परिभाषा के अनुसार बन गया तो भूमि क्षरण और भी तेज हो जाएगा। इससे तेज गर्म हवा, बार–बार धूल भरी आंधियाँ, बढ़ते तापमान का रास्ता खुल जाएगा; इसके साथ खेती के कारण गहरे जमीनी पानी के खत्म होने से, मिट्टी का कटाव और तेज होगा, जिससे कृषि भूमि की गुणवत्ता खराब हो जाएगी।

जहाँ अरावली को लेकर प्रस्तावित नए मानकों पर बहस खनन और पर्यावरण पर केंद्रित है वहीं लंबी अवधि की खाद्य सुरक्षा के लिए उभरता खतरा नजरअंदाज किया जा रहा है। मरूस्थलीकरण से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र अधिवेशन ने चेतावनी दी है कि मरूस्थलीकरण मिट्टी की उर्वरता को गंभीर नुकसान पहुँचाता है, जिससे उपजाऊ जमीनें अर्धशुष्क हो जाती हैं। निश्चित रूप से, मरूस्थलीकरण इतना गंभीर मुद्दा है कि इसे सिर्फ दावों और वादों तक सीमित नहीं रखा जा सकता। एक नई प्रबंधन योजना को लागू करने और 'मजबूत सुरक्षा' के वादे अब पर्याप्त सुरक्षा अपाय नहीं हैं।

निःसंदेह, अरावली की पहाड़ियाँ महज रणनीतिक खनिजों के लिए एक प्राकृतिक भंडार नहीं है; वे बड़े पैमाने पर परिस्थितिकी तंत्र सेवाएं भी प्रदान करती हैं। प्रकृति प्रदत्त इन परिस्थितिक और पर्यावरणीय सेवाओं की वास्तविक आर्थिक लागत का पता नहीं लगाया गया है। एक बार जब यह मोल पता चल जाएगा, तो राष्ट्र को पहाड़ियों को बरकरार रखने की आर्थिक आवश्यकता का अहसास होगा, भले ही खनिजों को निकालने की आर्थिक लागत पर ज्यादा जोर दिया जाता है।

द इकोनॉमिक्स ऑफ इकोसिस्टम सर्विसेज ऑफ बायोडायवर्सिटी के मानदंडों के अनुसार अगर राष्ट्रीय लेखा–जोखा में धार्मिक रूप से महत्वपूर्ण कैलास पर्वत और डल झील को आर्थिक मूल्य दिया जा सकता है, तो दुनिया की सबसे पुरानी पर्वत श्रृंखलाओं में से एक अरावली के लिए भी, इसी प्रकार का लागत–लाभ विश्लेषण किया जाना चाहिए।

दैनिक ट्रिब्यून, 31 दिसंबर, 2025

कुदरती संसाधनों के दुरूपयोग से उपजा शहरी जल संकट

कई साल पहले, मैंने टाइम्स पत्रिका में एक बहुत दिलचस्प लेख पढ़ा था 'केप टाउन के भारी जल संकट के बीच जीना कैसा होता है।' इस डर से कि आने वाले महीनों में शहर सूख जाएगा, दक्षिण अफ्रीका पहला शहर बन गया जिसने न केवल चेतावनी दी, बल्कि यह भी बताया कि जब नल सूख जाएंगे और दैनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए भूजल ढूंढ़े से भी नहीं मिलेगा तो यह कितना भयानक होगा।

पिछले कुछ हफ्तों में, बेंगलुरू जिस गंभीर जल संकट का सामना कर रहा है, उस पर कई लेख आए हैं, जिनमें शहर के कुछ हिस्सों में ऊँची इमारतों के निवासियों को पड़ोसी मॉल में शौचालय का उपयोग करने के लिए मजबूर होने की खबरें शामिल हैं, जो केप टाउन के दुखद कल्पनाओं वाले परिदृश्य के समान है। विशेष रूप से देश के एक अंग्रेजी दैनिक में प्रकाशित एक लेख 'जब नल सूख जाते हैं' में दिखाया गया कि कैसे कभी झीलों का शहर, जैसा कि इसे कभी जाना जाता था, एक शहरी कंक्रीट का जंगल बन गया, 'आर्थिक विकास' का शिकार हो गया। अजीम प्रेमजी, विश्वविद्यालय की सीमा मुंदोली ने अपने विचारोतेजक लेख में वास्तव में पाठकों को तीन 'आर' यानी हमारे रिश्ते, हमारे अधिकार और हमारी जिम्मेदारियाँ–पर विचार करने के लिए प्रेरित किया कि कैसे शिक्षित लोगों ने सपनों को इतनी तेजी से धूमिल होने दिया है।

यहीं पर मुझे लगता है कि बेंगलुरू के जल संकट की तुलना पंजाब के भूजल में चिंताजनक गिरावट से करना महत्वपूर्ण हो गया है। पानी की अधिक खपत करने वाली धान की खेती को तेजी से भूजल की कमी के पीछे प्रमुख कारण बताया जा रहा है, जबकि 138 विकास खंडों में से 109 से

अधिक ब्लॉक पहले से ही डार्क जोन, जहाँ निकासी की दर पुनः आपूर्ति की दर से अधिक है, में आते हैं। पानी की तलाश ने किसानों को अधिक गहराई तक जाने के लिए सबमर्सिबल पंप स्थापित करने के लिए उकसाया है, और कई मामलों में इसे सीधे जलीय चट्टानी परत से प्राप्त किया है। कई अध्ययनों से पता चला है कि पंजाब का भूजल जल्द ही खत्म हो जाएगा, कुछ का तो यह भी अनुमान है कि भूजल 17 साल से अधिक नहीं टिकेगा।

पंजाब में, कई दशकों से फसल विविधीकरण का सुझाव दिए जाने के बावजूद धान का क्षेत्रफल असल में बढ़ा है। इस वर्ष पंजाब में धान का सबसे अधिक रकबा और सर्वाधिक उपज भी दर्ज की गई। हालाँकि ऐसा माना जाता है कि धान की फसल में 1 किलो चावल पैदा करने के लिए 5,000 लीटर से अधिक पानी की आवश्यकता होती है। हालाँकि यह अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग होता है। पंजाब केंद्रीय भंडार में चावल का सबसे बड़ा योगदानकर्त्ता भी है। इसलिए यह खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फिर भी, ऐसा इसलिए है क्योंकि केंद्र व राज्य सरकारें धान के लिए आर्थिक रूप से कोई ठोस विकल्प लेकर नहीं आई है, फसल विविधीकरण अभी तक जड़े नहीं जमा सका है।

आश्चर्य होता है कि अगर फसल विविधीकरण पंजाब के लिए एक समाधान है, तो बेंगलुरू के मामले में यह 'शहर विविधीकरण' क्यों नहीं हो सकता? महानगर की वहन क्षमता को देखते हुए, शहर अब चरमरा रहा है। 2011 में 8.7 मिलियन से, अगले 10 वर्षो में जनसंख्या बढ़कर 2021 तक अनुमानित 12.5 मिलियन हो गई। अब तक यह 15 मिलियन के करीब होगी। इसलिए जनसंख्या में इतनी अनियंत्रित वृद्धि की अनुमति देने के लिए नीति निर्माताओं को जवाबदेह ठहराया जाना चाहिए। सभी दिशाओं में फैलने के बजाय, बेंगलुरू शहर का विविधीकरण किया जा सकता था – पड़ोसी शहर का

विविधीकरण किया जा सकता था – पड़ोसी शहरों को आबादी के प्रवाह को संभालने के लिए प्रोत्साहित करके।

किसी भी स्थिति में, 'शहरों और समुदायों' का सतत विकास एसडीजी 11 के अंतर्गत आता है, और यह एसडीजी 8 से भी जुड़ा है जो 'सभ्य कार्य और आर्थिक विकास' की बात करता है। 'शहरों और मानव बस्तियों को समावेशी, सुरक्षित, लोचशील और टिकाऊ' बनाना एसडीजी 11 द्वारा निर्धारित कार्यो में से एक है। स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए शहरी फैलाव को प्रतिबंधित करना शहर की नगर परिषदों का कार्य होना चाहिए था। पानी की बर्बादी को कम करने के लिए व्यवहारिक कदम उठाएं। ऐसे तदर्थ निर्णय ऐसे किसी संकट का समाधान नहीं कर सकते जो कि भयावह भविष्य की ओर इशारा कर रहा है। साथ ही, जिस तरह से झीलों और जल निकायों का नेटवर्क शहरीकरण की भेंट चढ़ गया है, उसे कुछ अपरिहार्य रूप में देखा जाता है। इसके विपरीत, यह प्रशासनिक ताकत के दुरूपयोग के अलावा और कुछ नहीं है जिसने झीलों को बिल्डरों द्वारा हड़पने की अनुमति दी। कई झीलें शहर द्वारा प्रतिदिन फेंके जाने वाले भारी कूड़े–कचरे का डंपिंग ग्राउंड बन गई है। झीलों को पुनर्जीवित करने के जन आंदोलन के बावजूद प्रशासन नींद में है। अब भी, उदाहरण के लिए, सभी की निगाहें शहर के पूर्वी हिस्से में जुन्नसांद्रा झील के 24 एकड़ में आवास परिसर स्थापित करने पर है, जो सूख गई है। आईटी हब के आसपास, हलनायकनहल्ली झील सभी प्रकार के मलबे और कचरे का डंपिंग ग्राउंड है। जैसा कि किसी ने कहा, 'कई झीलें बारहमासी बन गई हैं–कचरे और मलबे के साथ।'

धान की बढ़ती खेती के साथ–साथ पंजाब के किसानों को पराली–जलाने के लिए भी दोषी ठहराया जाता है। ऐसी, गलती करने वाले किसानों के खिलाफ एफआईआर, जुर्माना, राजस्व रिकॉर्ड में रेड एंट्री और सब्सिडी वाले इनपुट की आपूर्ति को प्रतिबंधित करने जैसे कुछ अन्य कदम उठाए जाते

हैं। मगर प्रशासनिक अधिकारियों और रियल एस्टेट कंपनियों पर एफआईआर क्यों नहीं की जाती जिन्होंने उस जमीनों पर कब्जा कर लिया जहाँ पर कभी झील और जलाशय होते थें। पर्यावरण चूक के लिए जब शहरी बाशिंदों और किसानों को दंडित करने की बात आती है तो दोहरे मानदंड किसलिए होने चाहिए? शहरियों से नरमी का बर्ताव किया जाता है जबकि सभी तरह की दंडात्मक कार्रवाई किसानों पर की जाती है? हरेक तरह की आर्थिक गतिविधि के लिए हमेशा पब्लिक–प्राइवेट पार्टनरशिप की बात की जाती हैं परंतु जब जल संकट जैसी बड़ी समस्याओं को संबोधित करने की बात आती है तो निजी क्षेत्र किसी सांझे प्रयास में हाथ मिलाने के लिए इच्छुक नजर नहीं आता है।

रोचक तौर पर, एक फेसबुक पोस्ट में सुझाव दिया गया था कि नारायणमूर्ति ने अपने 4 माह के पोते को 240 करोड़ रूपये की कीमत का जो शेयर गिफ्ट किया था उसका बेहतर इस्तेमाल हो सकता था यदि ऐसी राशि उस भीषण जल संकट के लिए दानस्वरूप प्रदान की जाती जिसका असर शहर के भविष्य पर हो रहा है। बहरहाल, जिस शहर में आप रहते हैं उसके किसी असाधारण संकट की चपेट में आने के समय उसके लिए खड़े होने की सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की निश्चित तौर पर सामूहिक जिम्मेदारी होती है।

पुलित्जर पुरस्कार विजेता लेखक जेरेड डायमंड ने अपनी पुस्तक 'कोलैप्स' में ऐसे कई समाजों पर दृष्टि डाली है जो अपने कुदरती संसाधनो का दुरूपयोग करने के चलते बर्बाद हो गए। जेरेड कंबोडिया स्थित अंगकोर वाट और मोहनजोदड़ो अब पाकिस्तान में, के पतन की बात करते हैं, जो फलती–फूलती बसाहटों के दो उदाहरण है जो बाद में नष्ट हो गयीं थी। उम्मीद करे कि आधुनिक समाज विफलताओं करे नहीं दोहराएगा और प्राकृतिक संसाधनों के घोर कुप्रबंधन के चलते बुद्धिमान शहर नष्ट नहीं होंगे, और वह भी 21 वीं सदी में तो नहीं।

दैनिक ट्रिब्यून, 10 अप्रैल, 2024

चिंताजनक है भोजन की बर्बादी

भोजन की बर्बादी को लेकर संयुक्त राष्ट्र ने हाल ही में एक रिपोर्ट जारी की है, रिपोर्ट के अनुसार, दुनिया में प्रतिदिन लगभग एक अरब थालियाँ बर्बाद होती है, यानी हर व्यक्ति बर्बादी करता है, यानि हर व्यक्ति एक वर्ष में औसतन 79 किलो खाना बर्बाद करता है, जो चिंता का विषय है, यह भी माना जाता है कि दुनिया में कुल पैदावार का लगभग 30 प्रतिशत बर्बाद हो जाता है, अकेले अमेरिका में जितना भोजन बर्बाद होता है, वह उप–सहारा अफ्रीका भोजन की जरूरतों को पूरा कर सकता है, वहीं इटली में होने वाली बर्बादी से इथियोपिया में भोजन की कमी पूरी हो सकती है, खाने की यह बर्बादी कुल ग्रीन हाउस गैस हाउस गैसों का जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण और पोषण पर पड़ने वाले प्रभावों पर भी चर्चा है, यह अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है, क्योंकि खाद्य सुरक्षा के साथ पर्यावरण बचाने की बात भी हो रही है।

उपरोक्त चर्चा के साथ हमें दुनिया में खाद्य पदार्थो की उपलब्धता के बारे में भी जानने की आवश्यकता है। अभी दुनिया में करीब 7.8 अरब लोग हैं, जिनके 2050 तक नौ अरब तक पहुँचने का अनुमान है और दुनिया में जो पैदावार हो रही है, यह 14 अरब लोगों के लिए पर्याप्त है। इसका अर्थ हुआ कि आज हम अपनी जरूरत से दोगुना उत्पादन कर रहे हैं। यह अलग बात है कि समाज के एक हिस्से को इसकी अधिक मात्रा उपलब्ध है, जबकि दूसरा इसकी कमी से जूझ रहा है, जहाँ 30 प्रतिशत बच्चे मोटापे से ग्रस्त हैं, वहीं दुनिया की 12 प्रतिशत जनसंख्या के पास पर्याप्त भोजन उपलब्ध नहीं है। इसे समझने के बाद हमें इस समस्या के समाधान के लिए दो तरह से प्रयास करने होंगे। पहली, दुनिया के बिगड़ते पर्यावरण को देखते हुए हम पैदावार उपजाने पर कम जोर दें और दूसरी भोजन की बर्बादी रोकने का प्रयास करें।

इससे हम दुनिया की जरूरत को तत्काल पूरा कर सकते हैं, इस प्रकार भोजन की बर्बादी भी कम होगी और हमें जरूरत से अधिक पैदावार भी नहीं उपजाना पड़ेगा। यहाँ हरित क्रांति की तरह ही एक और क्रांति की जरूरत है, जिस तरह हम हरित क्रांति लाये, उसी तरह भोजन की बर्बादी रोकने के लिए क्रांति लाने की जरूरत है, यदि यह क्रांति होती है तो धरती, पर्यावरण, प्राकृतिक संसाधन, जैव–विविधता, वन भूमि, सभी को पहुँचने वाला नुकसान कम हो सकता है, इस कार्य में सभी देशों को सहयोगिता करनी होगी, विशेषकर विकासशील देशों को, क्योंकि यहाँ अधिक क्षति पहुँच रही है।

रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि भोजन की जो बर्बादी होती है, उसमें 60 प्रतिशत घरेलू स्तर पर, 13 प्रतिशत आपूर्ति–श्रृंखला में होती है। सबसे कम बर्बादी रिटेल, यानी दुकानों में होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में भोजन की सबसे कम बर्बादी की बात भी रिपोर्ट में है, इसका हमारा धर्म है, जो हमें बताता है कि हम अपने साथ–साथ पशु–पक्षियों के भी भोजन का ध्यान रखें, वास्तव में जब हम खाद्य सुरक्षा की बात करते हैं, तो इसमें मनुष्य के साथ गाय, कुत्ते, पक्षी आदि की खाद्य सुरक्षा भी सुनिश्चित करते हैं, इतना ही नहीं, यहाँ खाद्य पदार्थो के खाये जाने वाले भाग समेत बचा हुआ भोजन भी बर्बाद नहीं होता, बल्कि उनका कंपोस्ट बना दिया जाता है, ऐसे में हमें भोजन की बर्बादी रोकने के लिए ग्रामीण क्षेत्र से सीखने की आवश्यकता है, शहरों की मानसिकता में पशु–पक्षियों को खिलाने की बात है ही नहीं, वास्तव में, गाँवों में मनुष्य और पशु–पक्षियों के बीच का संबंध घनिष्ठ होता है, यह भी कहा जाता है कि खाने की बर्बादी गरीब लोग करते हैं, जो सच नहीं है, बर्बादी वो करते हैं, जो शहरों में रहते हैं। जो पढ़े–लिखे हैं, गरीब, ग्रामीण तो अपना बचा रहा है, रिपोर्ट में जी–20 के

देश (ऑस्ट्रेलिया, जापान, यूके, अमेरिका) और यूरोपीय संघ द्वारा भोजन की बर्बादी को घरेलू स्तर पर रोकने में सफलता प्राप्त करने की भी चर्चा है, कनाडा और सऊदी अरब ने भी इस मामले में अच्छी सफलता प्राप्त की है, बाकी के देशों को अभी इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाने की जरूरत है।

इन बातों के अलावा यहाँ कुछ और महत्वपूर्ण बातों पर चर्चा जरूरी है। पहली बात, हमारे यहाँ कहा जाता है कि देश का 40 प्रतिशत भोजन बर्बाद हो जाता है। तीस वर्ष पूर्व भी यही बात कही जाती थी और आज भी यही कही जा रही है, पर किसी को नहीं पता कि इस आकलन का आधार क्या है। लुधियाना स्थित आइसीएआर के संस्थान सीफेट (सीआइपीएचइटी) द्वारा भारत में भोजन की बर्बादी पर किये गए एक अध्ययन में सामने आया है कि खाद्यान के भंडारण में सबसे कम नुकसान धान और गेहूँ का होता है। इसमें भी कुछ फल, जैसे अमरूद का सबसे अधिक नुकसान होता है, क्योंकि उसे पक्षी बहुत खाते हैं। इसी तरह टमाटर भी बहुत बर्बाद होता है। इससे पता चलता है कि हमारे देश में 40 प्रतिशत का जो आंकडा है, वह गलत है। दूसरी बात, शहरों में बर्बादी को रोकने के लिए जागरूकता बढ़ाने की ओर भी ध्यान देना होगा, इससे मीडिया की भूमिका और सेलिब्रिटीज–विशेषकर फिल्म स्टार, क्रिकेटर–की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, उन्हें समाज को जागरूक करना चाहिए, कि भोजन को बर्बाद होने से कैसे बचाया जाए, रही बात सरकार की, तो वह अपनी नीतियों में फूड वेस्टज रोकने की बात तो करती है परन्तु उसे दूसरी वेस्टज की तरफ भी ध्यान देने की जरूरत है। खाद्य पदार्थो की बर्बादी दो तरीकों से होती है। एक जो भोजन खाने के बाद बर्बाद हुआ। दूसरी बर्बादी आपूर्ति–श्रृंखला में होती है, उसे रोकने के लिए भी कदम उठाने की जरूरत है।

तीसरी बात, प्रोसेसिंग के समय खाद्य पदार्थो के बर्बाद होने से तो अपशिष्ट ही बनते हैं, जिन पर ध्यान नहीं दिया

जाता है। इन्हें कैसे रोका जाए, इसे लेकर अभी तक कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया है। कुल मिलाकर देखा जाए, तो संयुक्त राष्ट्र ने एकदम समय पर यह चेतावनी दी है। मुझे लगता है कि हमें अपनी नीतियों में परिवर्तन करना चाहिए, विशेषकर पोषण सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन को लेकर। अंत में, हमें पैदावार बढ़ाने पर जोर देने की जरूरत नहीं है। आज हम जितनी फसल उपजा रहे हैं, अगर उसी को सहेज लें, तो दूसरी हरित क्रांति की जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

संपादकीय प्रभात, 2 अप्रैल, 2024

हर पाँच सेकेंड में एक बच्चा भूख से मर जाता है,
इसलिए भोजन बर्बाद ना करें।

भोजन उतना ही लें थाली में,
ताकि व्यर्थ न जाए नाली में।

खाने की बर्बादी की चिंता से क्यों हैं सब अनजान,
दुनिया में एक–तिहाई खाने का होता है नुकसान।

आकर्षक पैकेज में रोगवर्धक प्रोसेस्ड फूड

जब भी मैंने कृषि उपज के लिए गारंटीशुदा कीमत का सवाल उठाया, ट्रोल के एक वर्ग ने हमेंशा मुझे यह कहते हुए घेर लिया कि उपभोक्ता को खराब गुणवता वाले कृषि उत्पादों के लिए भुगतान क्यों करना चाहिए। बड़े पैमाने पर शहरी आबादी में किसानों के प्रति अंतर्निहित दुराग्रह के अलावा, शायद वे जिस मुद्दे को उठाने की कोशिश कर रहे हैं वह यह है कि सारी कृषि उपज समान गुणवत्ता वाली नहीं होती है जो न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) पर खरीदे जाने के काबिल हो।

दरअसल, वे यह नहीं जानते कि एमएसपी को डिलीवरी भी किसानों की उपज की गुणवत्ता पर आधारित है। उदाहरण के लिए, बेहतरीन चावल की कीमत सामान्य किस्मों की तुलना में अधिक है। इसी तरह चीनी को हाई रिकवरी वाले गन्ने के लिए, चीनी मिले तुलनात्मक रूप से अधिक रेट देती हैं। यहाँ तक कि ए–ग्रेड के अंडों की कीमत भी सामान्य ग्रेड वालों से अधिक है। इसके लिए अभी भी और अधिक किया जा सकता है, लेकिन कम से कम यह उतना मामूली नहीं है जितना शहरी शिक्षित लोग हमें विश्वास दिलाना चाहते हैं।

फिर भी, जो लोग किसानों को सही कीमतों से वंचित करने के लिए बार–बार कृषि उपज की क्वालिटी की बात करते हैं, वे ही लोग हैं जिन्हें खराब गुणवत्ता के लिए भुगतान करने के लिए खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों द्वारा धोखा दिया जाता है। वास्तव में, वे निम्न गुणवत्ता वाले उत्पाद बहुत ज्यादा कीमत पर खरीदते हैं, जो प्राथमिक उत्पाद को उनके द्वारा भुगतान की गई कीमत से कई गुणा अधिक होता है। केवल इसलिए कि प्रोसेस्ड फूड आकर्षक पैकेज में आता

है, शायद कोई फिल्म स्टार या क्रिकेटर उस उत्पाद का विज्ञापन भी करता है, इसका मतलब यह नहीं है कि उपभोक्ता जो खरीदता है वह गुणवत्ता मानकों पर खरा उतरता है। यह वास्तव में बहुत बुरी बात है। औसत उपभोक्ता, जो स्वास्थ्यवर्धक प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थो की तलाश में मॉल्स, सुपरमार्केट में जाता है, यह अनुभव करने में नाकाम रहता है कि प्रोसेस्ड फूड प्रोडक्ट्स में से अधिकांश जो अलमारियों में लाइनों से सजा है – एक सुपर मार्केट स्टोर में लगभग 40,000 ऐसे प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ है – वे अंततः जो खरीदते हैं वह सेहत को नुकसान पहुँचाने वाला है। अगर मुझे खराब क्वालिटी का कहने की अनुमति दी जाए तो यह अक्सर समाज में होने वाली अधिकांश बीमारियों की जड़ है। जैसा कि मैंने अक्सर कहा है कि यदि बतौर विक्रेता आप जहर को आकर्षक पैकेजिंग के साथ पेश करना जानते हैं तो संभावना है कि उपभोक्ता इस खरीदने के लिए इच्छुक मिलें!

एक आँखें खोलने वाला अध्ययन जो ओपन–एक्सेस टन्नंसडिसिपिलनरी जर्नल, ग्लोबलाइजेशन एंड हेल्थ में 1 दिसंबर, 2023 को प्रकाशित हुआ, मैं चाहता हूँ कि हर उपभोक्ता इसे पढ़े। उस अध्ययन के तहत लॉरेन एट अल ने यह पता लगाने के लिए एक पद्धति विकसित की है कि प्रसंसकृत भोजन और पेय की बिक्री की कितनी मात्रा सेहत के लिए फायदेमंद की श्रेणी में आती है और कितनी अस्वास्थ्यकर की कैटेगरी में आती है। उन्होंने 20 शीर्ष वैश्विक खाद्य दिग्गज कंपनियों द्वारा निर्मित 1,294 ब्रांडों के 35,550 उत्पाद चुने। ये कंपनियाँ सात देशों – अमेरिका, ब्रिटेन, चीन, भारत, ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया से ली गई थीं – और आम तौर पर कोई भी यह मानेगा कि इन देशों को बेचे जा रहे प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थो की गुणवत्ता पर पैनी नजर होगी।

साल 2022 में इन 20 बड़ी खाद्य कंपनियों को रिटेल सेल 7.7 अरब डॉलर से अधिक हो गई। मुझे यकीन है कि जो कुछ सामने आया उसे जानकर आप हैरान रह जाएंगे। लगभग 89 प्रतिशत बिक्री को अस्वास्थ्यकर श्रेणी में रखा गया। हैरानी

होती है कि गुणवत्ता के प्रति जागरूक आबादी के उसी वर्ग का क्या होता है जिसकी एक किसान द्वारा अपनी उपज बेचने पर तो भौंहे तन जाती है, लेकिन खुशी–खुशी सुपर मॉर्केट से अस्वास्थ्यकर प्रसंसकृत खाद्य पदार्थ खरीद लेते हैं। शायद यह आकर्षक पैकेजिंग की चकाचौंध ही है जो उन्हें खरीदने के लिए धोखा देती है, उन्हें यह अहसास नहीं होता कि हर चमकती चीज सोना नहीं होती। अधिकतर अस्वास्थ्कर बिक्री प्रोसेस किये गये खाद्य उत्पादों, शीतल पेय, कन्फैक्शनरी और स्नैक्स से संबंधित थी। उदाहरण के लिए मॉडलेज, मार्स और पेप्सिको की 5 प्रतिशत से भी कम बिक्री सेहत के लिए सही खाद्य पदार्थो की श्रेणी में आती है, जबकि रेड बुल और फरेरो की कोई भी बिक्री बिल्कुल भी स्वास्थ्यकर नहीं थी। अध्ययन के मुताबिक, तुलनात्मक रूप से बेहतर कार्य करने वाली कंपनियों में ग्रुपो विंबो (42 फीसदी), डैनोन (35 फीसदी) और कोनैग्रा (32 फीसदी) शामिल थीं हालाँकि उनकी सेल का भी अधितर हिस्सा अस्वास्थ्यकर खाद्य पदार्थो से लिया गया था।

संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के अनुसार भारत में 74 प्रतिशत आबादी स्वास्थ्यवर्द्धक आहार का खर्च वहन करने में असमर्थ है, और यह भी माना जाता है कि जो लोग सेहतमंद आहार का खर्च उठा सकते हैं, वे स्वास्थ्यकर भोजन नहीं कर रहें हैं। ऐसे में मुझे आश्चर्य होता है कि भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण (एफएसएसएआई) क्या कार्य करता है जब देश में बिकने वाले प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थो की गुणवत्ता इतनी खराब है। इसका मतलब यह भी है कि एक परिवार जो अस्वास्थ्यकर भोजन खा रहा है वह असल में थाली तक पहुँचने वाले अस्वास्थ्यकर प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का परिणाम है।

फैसले लेने को उस प्रक्रिया में पैदा हो रहे हितों के टकराव की समस्त चर्चा के बावजूद जिसका मकसद सुरक्षित और स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थ यकीनी बनाना है, वैश्विक स्तर पर भोजन का कार्पोरेट औपनिवेशीकरण हो रहा है। जिसके

चलते कुछेक कृषि–व्यवसाय समूहों के हाथों से शक्ति सिमटती जा रही है। साल 2021 संयुक्त राष्ट्र खाद्य प्रणाली शिखर सम्मेलन, उसके उपरांत कोका–कोला के प्रायोजन के अंतरंग सीओपी 27 और तेल कंपनियों द्वारा सीओपी 28, एक ऐसी दिशा की ओर इशारा करता है जो स्वयं अस्वस्थ है। यह मुझे एक अन्य संबद्ध प्रश्न पर लाता है। जब भी भारत में किसानों को ज्यादा कीमतें देने की बात होती है, तो मुझे तुरंत जबाब मिलता है कि फूड प्रोसेसिंग को बढ़ावा देने की जरूरत है। उदाहरण के तौर पर खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय को पीएम–किसान संपदा योजना के तहत मार्च 2026 की अवधि तक 4600 करोड़ रूपये आबंटित किये जा चुके हैं, जो प्रमुखतया एग्रो प्रोसेसिंग समूहों के लिए इन्फ्रास्ट्रक्चर निर्माण, कोल्ड चेन व मूल्य संबर्द्धन ढांचे से जोड़ने के मकसद को लेकर है।

खाद्य प्रसंस्करण पर जोर ऐसे समय में दिया जा रहा है जब विश्व स्तर पर अति–प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थो और कैंसर समेत हानिकारक बीमारियों के बीच संबंध पर गंभीर चिंताएं जतायी जा रही है। साल 2018 के फ्रेंच न्यूट्रनेट–सांटे कॉहोर्ट अध्ययन से पता चला है कि हमारे आहार में अल्टन्न–प्रोसेस्ड खाद्य पदार्थों में 10 प्रतिशत को वृद्धि स्तन और प्रोस्टेट कैंसर सहित समग्र कैंसर भार में 10 प्रतिशत की वृद्धि की संभावना पैदा करने के लिए काफी है। लेकिन फिर भी, जब भी मुझे अग्रसर कृषि प्रसंस्करण उद्योग की संभावनाओं पर चर्चा करने वाले सम्मेलन में आमंत्रित किया गया–अति–प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों पर कभी कोई सत्र नहीं हुआ। वास्तव में, यह कहना गलत नहीं होगा कि जो अर्थशास्त्री व अन्य लोग फूड प्रासेसिंग की चर्चा करते हैं उन्हें बढ़ रहे कैंसर मामलों से इसके संबंध का कम ही पता होगा।

'एन्वायरनमेंट हेल्थ प्रस्पेक्टिव्स' के जनवरी 2024 अंक में प्रकाशित एक अन्य अध्ययन के जरिये ब्रेस्ट कैंसर से संबंधित 921 कैमिकल्स की पहचान की गयी है। इस कैमिकल्स में से 90 प्रतिशत से अधिक रसायन खाद्य और पेय पदार्थों, कीटनाशकों

जिनमें घरेलू कीट नियंत्रण शामिल है, के अलावा त्वचा और बालों की देखभाल उत्पादकों में पाए जाते हैं।

मैंने पहले बात की थी कि 89 प्रतिशत प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ और पेय पदार्थ गैर सेहतमंद है, उसके साथ तालमेल बिठाते हुए, यह स्पष्ट रूप से हमें बताता है कि प्रसंस्करण उद्योग तो जमकर मुनाफा कमा रहा है, लेकिन भोल–भाले उपभोक्ता ही है जो अंततः भारी कीमत चुकाते है। अक्सर घातक।

दैनिक ट्रिब्यून, 30 जनवरी 2024

पिज्जा, बर्गर, कोका–कोला को, यदि सबने 'टाटा' बोला।
तो स्वास्थ्य होगा सबका अच्छा, फिट होगा हर बच्चा बूढ़ा।

स्वच्छ खाना है सेहत का खजाना,
हमेशा खाएं घर का बना शुद्ध खाना।
घर का भोजन तन्दरूस्ती लाए
बाहर का भोजन रोगी बनाए।

वजन ही नहीं बढ़ाते, आपको उम्र से पहले।
बूढ़ा भी बना देते हैं, प्रोसेस्ड फूड।

पिंगलवाड़ा संस्था की ओर से किये जा रहे कार्य:-

पिंगलवाड़ा संस्था समाज की ओर से दुत्कारे/तिरस्कारे, अपंग, लूले-लंगड़े, अपाहिजों, अनाथों और लावारिस लोगों का घर है। इस संस्था की नींव महान् कर्मयोगी भगत पूरन सिंह जी ने सन् 1947 में रखी थी। उस समय भगत जी के पास मरीजों की सेवा के लिए न कोई सेवादार था, न कोई रहने के लिए उचित इमारत ही थी। रोगियों के खाने-पीने और दवाइयों के लिए किसी भी तरह का आर्थिक प्रबंध नहीं था। भगत पूरन सिंह जी अकेले ही सेवा के इस कठिन मार्ग पर निकले थे, परन्तु लोग जुड़ते गए और कारवाँ बनता गया। उनके पद चिन्हों पर चलते हुए आज उनकी सुयोग्य उत्तराधिकारी डॉ. इन्द्रजीत कौर जी और पिंगलवाड़ा ट्रस्ट के सदस्यों की मेहनत, लगन और दिशा-निर्देश में पिंगलवाड़ा संस्था भारत में ही नहीं बल्कि देशों-विदेशों में भी एक गौरवपूर्ण संस्था के रूप में उभर कर सामने आई है।

पिंगलवाड़ा एक नज़र

निवास और देखभाल

1925 से अधिक निवासियों के लिए रहने का प्रबन्ध तथा बुजुर्गों के लिए **'अपना घर'**।

इलाज और सुविधाएँ:- दवाइयाँ, मेडिकल लेबोरेटरी, ऑपरेशन थियेटर, भगत पूरन सिंह प्रारम्भिक कान सुनाई जाँच केन्द्र और पुनर्वास केंन्द्र। कानों के Cochlear Implant के लिए स्पेशल ऑपरेशन थियेटर, एम्बुलेंस तथा ट्रॉमा वैन, दाँतों का क्लीनिक, अल्ट्रासाउंड केन्द्र, मन्द बुद्धि बच्चों के लिए संवेदी केन्द्र, पुनर्वास केन्द्र, आँखों की जाँच का केन्द्र, बनावटी अंग केन्द्र, फिज़ियोथरेपी केन्द्र, अपना घर तथा योग्य लड़के-लड़कियों की शादियाँ ।

वातावरण:- * नर्सरी * वृक्ष लगाना * प्राकृतिक खेती * जागरूकता मुहिम * पानी शुद्धिकरण प्लांट *वर्षा के पानी का संग्रहण

जागरूकता:- ●प्रिंटिंग प्रेस ●लाइब्रेरी ●किताबें एवं इश्तिहार ● सेमीनार एवं वर्कशाप।

निवास और देखभाल

पिंगलवाड़ा संस्था की 09 अलग-अलग ब्रांचों में 1925 से अधिक भिन्न-भिन्न बीमारियों से ग्रस्त रोगियों के रहने का कुशल प्रबन्ध है।

31 दिसम्बर 2025 तक समूह ब्रांचों में मौजूदा रोगियों की संख्या:

मानसिक रोगी	– 353	गूंगे-बहरे	– 170
अधरंग पोलियो वाले	– 175	वृद्ध (बुजुर्ग)	– 136
मन्द-बुद्धि वाले	– 524	जख्मों वाले	– 47
शूगर वाले	– 153	टी. बी. वाले	– 15
स्कूल जाने वाले बच्चे	– 61	नेत्रहीन	– 40
लावारिस बच्चे	– 04	एड्स वाले	– 23
ठीक हो चुके रोगी	– 20	मिर्गी वाले	– 199
कुल मरीज़	**–*1925**	कैंसर वाले	– 05

पिंगलवाड़ा शाखाओं का ब्यौरा

शाखाएँ	**रोगी**
मुख्य शाखा अमृतसर (बच्चा वार्ड, माता महिताब कौर वार्ड, भाई प्यारा सिंह वार्ड)	– 276
मानांवाला कॉम्प्लेक्स	– 874
पंडोरी वड़ैच शाखा	– 199
गोइंदवाल शाखा	– 107
जालंधर शाखा	– 38
संगरूर शाखा	– 299
पलसोरा शाखा (चंडीगढ़)	– 121
पमाली शाखा	सिलाई सेंटर
दिल्ली शाखा	– 11
	कुल मरीज़ –*1925

रोगियों की गिनती प्रतिवर्ष बढ़ती रहती है। ठीक हो चुके रोगी काफी गिनती में उनके घरों को भेज दिए जाते हैं।

इलाज और सुविधाएँ:-

(क) डिस्पेंसरी और लेबोरेटरी की सुविधा:- रोगियों के इलाज के लिए पिंगलवाड़ा में मेडीकल लेबोरेटरी और डिस्पेंसरी की सुविधाएँ प्राप्त हैं जिनका वार्षिक खर्च 1 करोड़ 75 लाख रुपये हैं।

(ख) सहायक स्टाफ:- मानसिक रोगियों और मरीजों की देखभाल के लिए टेक्नीकल स्टाफ जैसे नर्से, लेबोरेटरी टेक्नीशियन तथा फॉर्मासिस्ट की सेवाएँ प्राप्त हैं।

(ग) खून-दान कैम्प:- दुर्घटनाग्रस्त ज़ख्मियों की सहायता के लिए तथा संस्था के मरीजों के लिए खून की कमी को पूरा करने के लिए प्रति वर्ष भगत जी की बरसी के अवसर पर खून-दान कैम्प लगाया जाता है। यह खून केवल पिंगलवाड़ा के रोगियों के लिए ही प्रयोग किया जाता है।

(घ) बनावटी अंग केन्द्र :- जरूरतमन्द अंगहीनों के लिए भगत पूरन सिंह जी की याद को समर्पित एक कृत्रिम अंग केन्द्र मानांवाला कॉम्प्लेक्स में स्थापित किया गया है जहाँ अंगहीनों को कृत्रिम अंग मुफ्त लगाए जाते हैं। नवम्बर 2003 से अब तक 27874 अंगहीनों को कृत्रिम अंग लगाए गए हैं।

(ड़) एम्बुलेंसें :- प्राथमिक डॉक्टरी सुविधाओं के साथ लैस एम्बुलेंस जी.टी. रोड पर घटित सड़क दुर्घटनाओं के पीड़ितों की सहायता के लिए हमेशा तैयार रहती है। संस्था की एम्बुलेंसें रोगियों को अस्पताल ले जाने की सुविधाएँ देती हैं।

(छ) स्पेशल ऑपरेशन थियेटर:- हर तरह के ऑपरेशन के लिए मानांवाला शाखा में आधुनिक ऑपरेशन थियेटर की सुविधा प्राप्त है।

(ज) दाँतों का क्लीनिक :- मरीजों के दाँतों की देख-रेख और इलाज के लिए दाँतों का क्लीनिक चार शाखाओं (मुख्य शाखा, मानांवाला शाखा, पलसोरा शाखा और संगरूर शाखा) में भी स्थापित किया गया है।

(झ) फिजियोथरेपी केन्द्र:- सन् 2005 से मानांवाला शाखा में फिजियोथरेपी केन्द्र स्थापित किया गया है जिसमें आधुनिक उपकरणों से पिंगलवाड़े के लगभग 100 मरीज लाभ ले रहे हैं। फिजियोथरेपी केन्द्र संगरूर शाखा और पलसोरा शाखा में स्थापित किया गया है।

(ञ) मंदबुद्धि बच्चों के लिए संवेदी केन्द्र (Sensory Room):- मानांवाला कॉम्प्लेक्स में मंदबुद्धि बच्चों के सही विकास के लिए एक आधुनिक Sensory Room स्थापित किया गया है।

(ड) योग्य लड़के लड़कियों की शादियाँ और पुनर्वास:- पिंगलवाड़ा में रहकर के जवान हुए लावारिस लड़के लड़कियों की शादियाँ और उनको कमाने लायक बना कर अपने पैरों पर खड़ा किया जाता है ताकि पिंगलवाड़ा से बाहर जाकर अगर वह आम समाज में रहे तो वह आम आदमी के जैसा जीवन जीने के काबिल हो। अब तक 6 लड़के और 66 लड़कियों के विवाह हो चुके हैं। कुल 72 है।

(ट) रीढ़ की हड्डी से ग्रसित रोगियों का पुनर्वास केंन्द्र:- पिंगलवाड़ा मानांवाला शाखा में रीढ़ की हड्डियों से पीड़ित रोगियों के लिए भगत पूरन सिंह पुनर्वास केंन्द्र का उद्घाटन किया गया है यह केन्द्र पिंगलवाड़ा संस्था के उद्यम से रीढ़ की हड्डी से ग्रसित पिंगलवाड़ा के रोगियों के लिए बनाया गया है, ताकि सर्जरी के बाद ऐसे पीड़ितों को इस काबिल बनाया जाए कि वह इस बीमारी के बाद व्हील चेयर का उचित प्रयोग कर सके और आम आदमी के तरह अपना काम कर सके।

(ठ) बेकरी यूनिट का उद्घाटन:- पिंगलवाड़ा मानांवाला शाखा में मरीजों को बेकरी से संबंधित खाने-पीने की चीजें जैसे बिस्कुट, रस और केक आदि पौष्टिक एवं साफ-सुथरी मिलने के उद्देश्य से एक बेकरी लगाई गयी है और रीढ की हड्डी

से पीड़ित मरीज को बेकरी की सिखलाई दी जाती है जिससे कि वह जिन्दगी में यह कार्य अपना सके।

(ढ) **भगत पूरन स्पेशल वार्ड** :- भगत पूरन सिंह जी की 32वीं बरसी के अवसर पर पिंगलवाड़ा संस्था द्वारा भगत पूरन सिंह जी के नाम पर श्री गुरू राम दास अस्पताल वल्ला अमृतसर और गुरू नानक देव अस्पताल अमृतसर में लावारिस मरीजों के इलाज के लिए 2 वार्ड का उद्घाटन किया गया, जहाँ मरीजों के लिए पिंगलवाड़ा संस्था की तरफ से मुफ्त दवाईयाँ भोजन, कपड़े तथा सेवादारों की सहूलियत दी जा रही है।

3. नि:शुल्क शैक्षिक सुविधाएँ:-

गरीब बच्चों को शिक्षित करने के लिए पिंगलवाड़ा संस्था ने भगत पूरन सिंह जी की याद को समर्पित भिन्न-भिन्न पाठशालाएँ खोली हैं।

(क) **भगत पूरन सिंह आदर्श सी. सै. स्कूल मानांवाला कॉम्प्लेक्स अमृतसर:-** यहाँ गरीब 701 विद्यार्थियों को शिक्षा, स्टेशनरी, स्कूल की वर्दी आदि मुफ्त दी जाती है। संस्था की यह सहृदय सोच है कि ये बच्चे स्वयं को हीन न समझें और अपने पैरों पर खड़े होकर सभ्य समाज में एक अच्छा नागरिक बनकर रह सकें। इन बच्चों में 35 बच्चे पिंगलवाड़ा द्वारा पोषित हैं।

(ख) **भगत पूरन सिंह सिलाई प्रशिक्षण केन्द्र:-** पिंगलवाड़े की ओर से अपने बच्चों को अपने पैरों पर खड़े करने के लिए सिलाई, कढ़ाई की सिखलाई देने हेतु इस केन्द्र की स्थापना की गई है।

(ग) **भगत पूरन सिंह गूंगे-बहरे बच्चों का स्कूल, मानांवाला, अमृतसर** :-भगत पूरन सिंह गूंगे-बहरे बच्चों का स्कूल मानांवाला कॉम्प्लेक्स में मई 2005 से चल रहा है, जिसमें इस समय 170 बच्चे आधुनिक उपकरणों द्वारा शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

(घ) **भगत पूरन सिंह स्पेशल शिक्षा मानांवाला, अमृतसर:-** पिंगलवाड़ा के 237 मन्द-बुद्धि बच्चों की बुद्धि को विकसित करने और उन्हें अपने पाँव पर खड़ा करने हित मानांवाला कॉम्प्लेक्स में स्पेशल विधि और उपकरणों द्वारा इन बच्चों को ट्रेनिंग दी जाती है।

(ड़) **RCI के अधीन**

भगत पूरन सिंह इंस्टीच्यूट फॉर स्पेशल नीडज़:- इस इंस्टीच्यूट में गूंगे तथा मंदबुद्धि बच्चों के लिए अध्यापकों को शिक्षण देने के लिए डिप्लोमा कोर्स कराया जाता है। जिसमें 110 लड़कियाँ मुफ्त शिक्षा ले रही हैं। यह सारे स्कूल पिंगलवाड़ा सोसाइटी आफ ऑनटारियो और पिंगलवाड़ा अमृतसर के साथ प्रोजेक्ट के अधीन चलाए जा रहे हैं।

(च) **भगत पूरन सिंह आदर्श स्कूल बुटरकलां (कादियाँ) गुरदासपुर:-** यहाँ पर भी योग्य तथा अनुभवी अध्यापकों के मार्ग दर्शन में लगभग **430** बच्चे नि:शुल्क विद्या प्राप्त कर रहे हैं।

(छ) **भगत पूरन सिंह गूंगे बहरे बच्चों का स्कूल कटौरा, फिरोजपुर:-**यह स्कूल साल **2016** से चल रहा है जिस में **23** बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे है।

(ज) **भगत पूरन सिंह गूंगे बहरे बच्चों का स्कूल सरहाली, तरन तारन** :-इस स्कूल में **34** बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे है।

(झ) **भगत पूरन सिंह स्कूल ऑफ स्पेशल एजुकेशन, पलसौरा, (चंडीगढ़):-** इस स्कूल में 40 मंदबुद्धि बच्चों को विशेष विधियों और उपकरणों के द्वारा शिक्षित करके अपने पैरों पर खड़े होने योग्य बनाने का प्रयास किया जाता है।

(ञ) **भगत पूरन सिंह गूंगे बहरे बच्चों का स्कूल गाँव कॅकों होशियारपुर:-** इसमें 32 बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

(ट) भगत पूरन सिंह गुरमति कॉलेज की स्थापना 18 सितंबर 2022

को की गई है। जिम में गुरमति प्रचार, गुरमति संगीत तथा व्यवसायिक प्रशिक्षण कोर्स की निष्काम सिखलाई देने का प्रयास किया गया है।

(ट) **कम्प्यूटर शिक्षा:-** सूचना एवं टेक्नोलॉजी के विस्तार को देखते हुए स्कूल के बच्चों को आधुनिक समाज का अंग बनाने के लिए संस्था की ओर से कम्प्यूटर शिक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया है।

(ठ) **होस्टल का प्रबंध:-** पिंगलवाड़ा मानांवाला कॉम्प्लेक्स में पढ़ने वाले लगभग 180 लड़के-लड़कियों के लिए अलग-अलग होस्टल का प्रबन्ध किया गया है।

(ढ) **भगत पूरन सिंह किताब घर:** पिंगलवाड़ा मानांवाला शाखा में एक किताब घर स्थापित किया गया है।

4. पर्यावरण जागरूकता:-

(क) **वृक्षारोपण उत्सव:-** मानव तथा प्रकृति के सम्बन्ध में सन्तुलन बनाए रखने के लिए भगत जी काफी चिन्तित रहा करते थे जिसे आज पूरे विश्व समुदाय से मान्यता मिली है। वृक्ष तथा जंगल समाज तथा विश्व के लिए जिन्दगी और मौत का सवाल हैं। पिंगलवाड़ा संस्था वातावरण को स्वच्छ बनाने और बंजर बन रही धरती के भू-क्षरण को रोकने के लिए भगत जी की बरसी पर हर साल स्कूलों, कॉलेजों, श्मशान-घाटों तथा अन्य सार्वजनिक जगहों पर वृक्ष लगाने की मुहिम चलाती है। इसके अलावा पिंगलवाड़ा संस्था की तरफ से हर साल अपनी नर्सरी में अलग-अलग किस्मों के लगभग 60 हजार बूटे तैयार करके अलग-अलग संस्थाओं को भेजे जाते हैं।

(ख) **कुदरती खेती** :- ज़हर मुक्त अन्न और सब्जियाँ उपजाने के लिए पिंगलवाड़ा की ओर से कुदरती खेती का फार्म तैयार किया गया है। यहाँ गेहूँ, चना, गन्ने के अलावा हर प्रकार की मौसमी सब्जियाँ उगाई जाती है जो पिंगलवाड़ा के निवासियों के लिए प्रयोग की जाती है।

(ग) भगत पूरन सिंह जी की 30वीं बरसी पर 2 अगस्त 2022 को मानांवाला खुरद में एक एकड़ में जंगल लगाया गया।

(ग) **जागरूकता मुहिम:-** इस मुहिम अधीन वातावरण जागरूकता के लिए सेमीनार और वर्कशाप का प्रबन्ध किया जाता है।

(घ) **पानी शुद्धिकरण प्लांट:-** इस उपकरण द्वारा पानी साफ करके पीने के लिए और रसोई में प्रयोग करने के लिए किया जाता है। यह प्लांट मानांवाला कॉम्प्लेक्स में है।

(ड़) **वर्षा के पानी का संग्रहण (Water Harvesting)**

(च) **सोलर पावर ऊर्जा:-** मानांवाला शाखा, गोइंदवाल शाखा और धीरेकोट फार्म में सोलर ऊर्जा द्वारा बिजली प्राप्त की जाती है।

5. **पूरन प्रिंटिंग प्रेस** :- सामाजिक बुराइयों के प्रति लोगों को जागरूक करने के लिए पिंगलवाड़ा संस्था का खास योगदान रहा है। पिंगलवाड़ा मानांवाला कॉम्प्लेक्स में स्थापि **'पूरन प्रिंटिंग प्रेस'** हर तरह के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, सभ्याचारक एवं स्वास्थ्य-सम्बन्धीजन चेतना विषयों पर साहित्य छाप कर जन-साधारण में कई वर्षों से मुफ्त बाँट रही है। पिंगलवाड़े की पूरन प्रिंटिंग प्रेस का और पब्लिसिटी का सालाना खर्च **03 करोड़ 50 लाख रुपये** है। दानियों के सहयोग से चल रहे प्रेस की समाज को बहुत बड़ी देन है।

6. **समाज कल्याण संबंधी कार्य:-**

(क) **कुदरती आफत से पीड़ित लोगों की सहायता:-** कुदरती आफत जैसे, बाढ़, भूकम्प, तथा चक्रवात लहर से प्रभावित लोगों की पिंगलवाड़ा संस्था की तरफ से समय-समय पर हर सम्भव सहायता की जाती है।

(ख)**लावारिस लाशों का दाह-संस्कार:-** पिंगलवाड़ा की तरफ से लावारिस लाशों का अन्तिम संस्कार पूरे सत्कार से किया जाता है।

(ग) वृद्धों की देखभाल:- पिंगलवाड़ा की संगरूर शाखा में एक वृद्ध-घर मार्च 2002 से चल रहा है और एक वृद्ध-घर का निर्माण मानांवाला कॉम्पलेक्स में किया गया है जिसमें 92 वृद्ध रखने का विशेष प्रबन्ध किया गया है।

(घ) अजायब घर तथा दस्तावेजी फिल्में:-विषम मार्ग के पथिक भगत पूरन सिंह जी की जीवनी पर आधारित तस्वीरों का एक संग्रह अजायब घर के रूप में मुख्य पिंगलवाड़ा अमृतसर में स्थापित किया गया है। इसके इलावा भगत पूरन सिंह जी के जीवन को प्रगट करती हुई दस्तावेजी फिल्में भी अलग-अलग बुद्धिजीवियों की ओर से निर्मित की गई हैं; जैसे कि-

(i) एक मिसाल Pingalwara Presentation

(ii) Pingalwara-Home for Homeless

(iii) Pingalwara-A Selfless Home (Documentry by Gurmeet Sodhi a famous American Media Personality)

(iv) पिंगलवाड़ा दस्तावेजी फिल्म शुभ करमन।

(v) Pingalwara Educational Endeavours

(vi) कुदरती खेती (Natural Farming)

(vii) पानी की समस्या

(viii) वृक्ष

(ix) **इहु जन्म तुम्हारे लेखे** (फिल्म):- भगत पूरन सिंह जी की जीवनी पर आधारित फीचर फिल्म **'इहु जन्म तुम्हारे लेखे'** पिंगलवाड़ा संस्था द्वारा बनाई गई जो 30 जनवरी 2015 को देश-विदेश में प्रदर्शित हुई। इस फिल्म के द्वारा नई पीढ़ी के लिए भगत जी की समाज के प्रति निष्काम सेवा और कुर्बानी के बारे जानकारी दी गई है। इस फिल्म को देश और विदेशों में भरपूर सहयोग मिला है।

(x) पिंगलवाड़ा परिवार के बच्चों की ओर से गायन की 'गुरबाणी कीर्त्तन' की वीडियो की डी.वी.डी. डॉ. ओम गौरी दत्त शर्मा डिप्टी डायरेक्टर जालन्धर दूरदर्शन द्वारा तिथि 09-07-2016 को रिलीज की गई।

(xi) भगत पूरन सिंह स्मारक:- भगत जी के जन्म स्थान गाँव राजेवाल रोहणों जिला लुधियाना में भगत **'पूरन सिंह स्मारक'** की स्थापना की गई है। यह स्मारक 4 जून 2004 को मनाई गई उनकी पहली जन्म शताब्दी को समर्पित है।

(xii) गोशाला:- पिंगलवाड़ा मानांवाला कॉम्प्लेक्स और भगत पूरन सिंह कुदरती खेती फार्म धीरेकोट, अमृतसर दो जगह में डेयरी फार्म बनाए गये है। जिसमें लगभग 300 पशुओं की देखभाल की जा रही है। इनके द्वारा पिंगलवाड़े के मरीजों को ताजा दूध दिया जाता है।

(xiii) **चिकित्सा अपशिष्ट भस्मक संयंत्र (Medical Waste Incinerator) :** 20 नवम्बर, 2020 को पिंगलवाड़ा की मानांवाला शाखा में जैव-चिकित्सा अपशिष्ट को जलाने के लिए विशेष संयंत्र का उद्घाटन किया गया। इस संयंत्र के माध्यम से, पिंगलवाड़ा के रोगियों के डायपर, सिरिंज और ड्रिप की प्लास्टिक बोतलें मशीन में डालकर जलाये जाते हैं।

(xiv) **गोबर गैस पलांट:-** इस पलांट का उद्घाटन 3 जून 2024 को मानांवाला शाखा में किया गया जो कि अब मानांवाला शाखा में लंगर बनाने के काम आ रहा है।

जरूरी सूचना

(I) आल इण्डिया पिंगलवाड़ा चैरिटेबल सोसायटी रजिस्ट्रार ऑफ कंपनीज़ पंजाब और हिमाचल प्रदेश के पत्र नम्बर 130 ऑफ 1956-57 तिथि 06-03-1957 और संशोधित नम्बर A-28/4540 तिथि 07-07-1998 द्वारा रजिस्टर्ड है।

(II) पिंगलवाड़ा को दी जाने वाली सहायता को इन्कम टैक्स

के सेक्शन 80-G अनुसार Principal Commissioner of Income Tax / Commissioner of Income Tax के UniqueRegistrationNumberAAARA2237RF20217 तिथि 23-09-2021 अधीन छूट प्राप्त है। नकद/कैश में दी जाने वाली छूट केवल 2000/- रुपए तक ही मिल सकती है।

(III) पिंगलवाड़ा संस्था का

(i) PAN नम्बर AAATA2237R

(ii) FCRA नम्बर 115210002

(iii) GST No. 03AAATA2237RIZR

(iv) CSR Registration No. CSR00013643 है।

(IV) पिंगलवाड़ा का रोजाना खर्च 11 लाख 90 हजार रुपए है जो कि दानी सज्जनों के सहयोग से तथा भगत जी द्वारा दी गई प्रेरणा अनुसार होता है।

(V) विदेशों में भी पिंगलवाड़ा संस्थान के कार्यालय:- अपने देश के अतिरिक्त कैनेडा स्थित पिंगलवाड़ा सोसायटी ऑफ ऑनटारियो इंगलैंड स्थित चैरिटेबल सोसायटी यू.के. और अमेरिका में पिंगलवाड़ा के सहयोजन के साथ जसवंत साहनी चैरिटेबल ट्रस्ट में सीधे रूप से सेवा दी जा सकती है जहाँ उन देशों के नियमानुसार टैक्स में छूट प्राप्त होती है।

वाहिगुरु जी का खालसा ।। वाहिगुरु जी की फतेह ।।

डॉ. इन्द्रजीत कौर,
मुख्य सेविका,
आल इण्डिया पिंगलवाड़ा चैरिटेबल सोसायटी (रजि.)
अमृतसर।

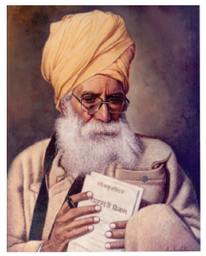

भगत पूरन सिंह जी के उपदेश

–प्रकृति के स्त्रोतों की रक्षा करो।
–सादा जीवन व्यतीत करो।
–अधिक से अधिक वृक्ष लगाकर प्राणीमात्र का भला करो।
–खादी का कपड़ा पहनकर बेरोजगारी को घटाने में सहायता करो।
–सादा खाना, सादा पहनना तथा सादगी में रहने का आनन्द ही कुछ और है।
–डीज़ल तथा पेट्रोल का कम से कम प्रयोग करो तथा बढ़ रही आबादी की रोक-थाम के लिए संयममयी जीवन व्यतीत करो।
–रो रही हवा, पानी तथा धरती की पुकार को सुनो।
–वृक्ष लगाना न भूलो, वृक्ष देश की खुशहाली के आधार हैं।
–बरसात की ऋतु में हर आदमी कम से कम एक वृक्ष अवश्य लगाकर मानवता का भला करें।
–जानवरों की सुरक्षा के लिए मनुष्य को अपने अन्दर दयामयी भावना रखते हुए अधिक से अधिक प्रयत्न करना चाहिए।

–भगत पूरन सिंह जी